राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान

प्रो० कन्हैयालाल सहल एम० ए०

अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग

बिड़ला कालेज, पिलानी

प्रथम संस्करण } अक्टूबर १९४९ { मूल्य ३) रुपया

प्रकाशक :—

कन्हैयालाल सहल एम० ए०

बिड़ला कालेज, पिलानी

(जयपुर-राजस्थान)

प्रथम संस्करण

सं० २००६

मुद्रक :—

आचार्य रा० हारीत

राजपूत प्रेस लिमिटेड, जयपुर

विषय-सूची

आमुख

"राजस्थान की मिट्टी वीरता की समाधि है। इसने हमारे अपरिमेय रक्त का पान किया है, अतएव यह आशा स्वाभाविक ही है कि किसी दिन वह हमारे लिए नए फूल और नई तलवारें भी उगल दे। इस मिट्टी पर खड़ा होकर भावनाओं को रोक रखना कठिन है। यहाँ आते ही भावनाशील मनुष्य की कल्पना में अनेक तलवारें एक साथ झनकार उठती हैं, पूर्वजों का रक्त मानों नींद से जग कर धमनियों में खौलने लगता है तथा भारतीय नारी के बलिदान की गौरव-शिखा, चित्तौड़ की चिता मनश्चक्षु के सामने साकार हो जाती है। पैर यह सोच कर ठिठकने लगते हैं कि कहीं अगले कदम पर किसी सूरमा की समाधि न हो और हृदय अधीर होकर धरती से सचमुच ही अनुरोध करने लगता है कि

कहदे उनसे जगा कि
कब से उनका रथ खाली है
बालू की कणिका में
किस गौरव की रखवाली है ?"*

जिस जाति के पास अपना इतिहास नहीं है उसकी हालत उस मनुष्य के समान है जो अपने घर का रास्ता भूल कर इधर-उधर भटक रहा हो। दर्शन-शास्त्र यदि नेत्रों के समान है तो इतिहास वह आलोक है जिसकी सहायता से अन्धकारपूर्ण अतीत में भी झाँक कर हम देख सकते हैं। नेत्र होते हुए भी आलोक के अभाव में अन्धकार को भेदने में हमारी दृष्टि कुंठित हो जाती है। स्मरण-शक्ति खो जाने पर जो हालत किसी व्यक्ति की होती है, इतिहास के खो जाने पर वही हालत किसी राष्ट्र की होती है।

---

* 'मिट्टी की ओर' (दिनकर)—पृ० १२६-१२७

किन्तु सभी देशों में इतिहास के साथ परम्परागत अनुश्रुतियाँ इस तरह मिल जाती है कि उनका पृथक्करण यदि असंभव नहीं तो भी कठिन अवश्य हो जाता है। अनुश्रुतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी जबानी चली आती हैं और मौखिक आदान-प्रदान के कारण उनमें बहुत से क्षेपकों का समावेश हो जाता है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा इतिहास प्रस्तुत करने वाले इतिहासकार अनुश्रुतियों को सन्देह की दृष्टि से देखें। उदाहरण के लिए ऊजळी और जेठवा के उपाख्यान को लीजिये जहाँ नारी ने अपमानित होकर जेठवा को शाप देते हुए कहा था "विश्वासघाती! तूने धोखा दिया, फँसा कर मेरा अपमान किया। अब मैं समझी कि मैंने कुम्हार के घर से कच्चा घड़ा उखाड़ लिया था और उससे जीवन-सागर पार करने चली थी। कुटिलता और प्रपंच भरा तुम्हारा राज्य सुलग उठे; इस नगरी के निर्जन खंडहरों पर काले काग बोलेंगे।" किंवदन्ती है कि जेठवा का राज्य समय पाकर रसातल को चला जाता है। वह कोढ़ से गल कर बुरी मौत मरता है। जेठवा की यह हालत सुन कर ऊजळी वहाँ पहुँचती है और पति की मृत्यु पर सती होती है। किन्तु वैज्ञानिक इतिहासकार ऊजळी के सती होने की बात को तभी प्रामाणिक मानेगा जब किसी प्रकार के अभिलेख या अन्य किसी साधक प्रमाण द्वारा इसकी पुष्टि हो जाती हो। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि अनुश्रुतियों का कुछ महत्त्व ही नहीं है। अनुश्रुतियों के मूल्याङ्कन के समय यह आवश्यक है कि एक ही तरह की भिन्न भिन्न अनुश्रुतियों की परस्पर तुलना की जाय और जड़ की बात का पता लगाया जाय। अनुश्रुतियों के सम्बन्ध में प्रायः यह देखा जाता है कि उनका कलेवर अनेक प्रकार की कपोल कल्पनाओं से आवेष्टित हो जाता है किन्तु अन्य प्रमाणों के अभाव में इतिहासकार को भी अनुश्रुतियों की शरण लेनी पड़ती है; और फिर भारतवर्ष में तो एक

कठिनाई और रहा है। यहाँ के निवासियों ने महापुरुषों के जीवन की वास्तविक घटनाओं को महत्त्व न देकर उनके द्वारा दिये गये उपदेशों में सन्निहित उनके सांस्कृतिक जीवन को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ठहराया है। यही कारण है कि मुसलमानों के इस देश में आने से पहिले राजतरंगिणी जैसे कुछ अपवादों को छोड़ कर भारतवर्ष का कालक्रमागत इतिहास नहीं मिलता। अलबरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग वस्तुओं के ऐतिहासिक क्रम की ओर विशेष ध्यान नहीं देते; घटनाओं के कालक्रमागत वर्णन की ओर वे सचेष्ट नहीं हैं और ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी के लिए जब उनसे आग्रहपूर्वक पूछा जाता है तो वे अवश्य ही कथा कहने लगते हैं। †

जैसा ऊपर कहा गया है, अनुश्रुतियों में सत्य और कल्पना का बड़ा जटिल सम्मिश्रण मिलता है। तथ्यान्वेषण करने वाला इतिहासकार अनेक प्रकार के साधक-बाधक प्रमाणों से कपोल कल्पना में से सत्य को पृथक् करने का प्रयत्न करता है। इससे यह स्पष्ट है कि अनुश्रुतियाँ इतिहास के लिए अमूल्य सामग्री तो अवश्य प्रस्तुत करती हैं किन्तु वे जिस रूप में हमें मिलती हैं उसे सर्वांश में ऐतिहासिक तथ्य मान लेने की भूल न करनी चाहिए।

राजस्थान में ऐसे असंख्य ऐतिहासिक उपाख्यान प्रचलित हैं जिनका सम्बन्ध अनुश्रुतिओं से है। इन उपाख्यानों से यहाँ के सांस्कृ-

---

† 'The Hindus do not pay much attention to the historical order of things; they are careless in relating the chronological succession of things, and when they are pressed for information they invariably take to tale-telling"—(Albiruni's India)
अनुश्रुतियों के संबन्ध में देखिये 'प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ' में प्रकाशित एतद्विषयक लेख

तिक आदर्शों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार के सौ उपाख्यानों का संकलन किया गया है जिनमें गद्य और पद्य का सम्मिश्रण है। पद्यों में प्राय: डिंगल के गीत और दोहे-सोरठों का प्रयोग ही इस पुस्तक में हुआ है। निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि डिंगल गीत का उद्भावक कौन था। चारण लोग डिंगल गीत को अपनी ही सम्पत्ति समझते हैं और डिंगल का अधिकांश साहित्य चारणों द्वारा ही रचा गया है यद्यपि चारणेतर जातियों द्वारा लिखे हुए गीत भी मिलते हैं किन्तु नानूराम के कथनानुसार वीरचन्द्र के पुत्र हरिचन्द्र ने ही डिंगल गीत की सर्वप्रथम उद्भावना की थी। उसने डिंगल भाषा में २४ गीत लिखे थे और एक डिंगल कोश का भी संग्रह किया था। * महाकवि श्री सूर्यमल्लजी मिश्रण ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वंशभास्कर' में चारणों को ही डिंगल गीत का उद्भावक माना है। आज भी कुछ विद्वान् 'डिंगल गीत' और 'चारण-गीत' को समानार्थक शब्दों की तरह प्रयोग करते देखे जाते हैं। एक बहु-प्रचलित दोहे में तो 'गीत' का लक्षण ही निम्नलिखित रूप में स्थिर कर दिया गया है—

"निर्मित चारण जाति को, मेरु मांपा में होय।
वर्ण मात्र जामें विहंसि, गीत कहावे सोय॥"

इस दोहे को पढ़ कर यह भ्रान्त-धारणा तो नहीं बना लेनी चाहिए कि चारणों के अतिरिक्त अन्य किसी ने डिंगल-गीतों की रचना की ही नहीं है, क्योंकि राजपूतों, भाटों, मोतीसरों और भोजकों आदि के बनाये हुए अनेक गीत आज उपलब्ध हैं। राजाओं, सरदारों, राज्याधिकारियों, चारणों, भाटों और मोतीसरों आदि के यहाँ इन

* Preliminary Report on the operation in search of Mss. of Bardic Chronicles by Mahamahopadhyaya Harprasad Shastri—page 30.

गीतों के बड़े बड़े संग्रह मिलते हैं। * 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' की पद्धति पर ही शायद उक्त दोहा किसी ने कह दिया होगा, अथवा यह भी संभव है कि चारण-जाति ने ही सर्व प्रथम गीत की उद्भावना की हो, कालान्तर में अन्य जातियों ने भी अनुकरण पर गीत-रचना प्रारम्भ कर दी हो। गीत के उद्भावक का यदि पता चल गया होता तो वह व्यक्ति राजस्थानी साहित्य में अमर हो गया होता।

"गीतों' का जन्म कब हुआ इसका ठीक ठक पता नहीं चलता। तेरहवीं शताब्दी से इनके उदाहरण मिलते हैं। × उसके पहिले कोई उदाहरण लिखित रूप में देखने में नहीं आया। हाँ, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए० लिखित 'चारण' नामक लेख में 'अनर्घराघव' से एक उदाहरण मिलता है। उससे पता लगता है कि गीत और ख्यात नवीं शताब्दी में भी वर्तमान थे। उद्धरण यह है :—

''चर्चाभिश्चारणानां चितिरमणपरां प्राप्य सम्मोदलीला—
'माकीर्तेः सौविदल्ला नव गणय कवि भ्रात (?) वार्ताविलासान्।
गीतं ख्यातं च नाम्ना किमपि रघुपतेरद्य यावत्प्रसादा—

* राजपूताने का इतिहास (स्वर्गीय श्री ओझाजी) – पहली जिल्द पृ० २६

× हेमचन्द्राचार्य ने प्राकृत बाल भाषा मागधी व्याकरण में जो निम्न-लिखित उदाहरण दिया है वह छोटा साणोर छन्द है—

ढोल्ला सामला धण चंपावण्णी।
णाइ सुवण्णरेह कसवट्टइ दिण्णी॥

अर्थात् पति साँवले रंग का है और प्रेयसी चंपा के समान रंग वाली है जिसकी नाक कसौटी पर लगी हुई स्वर्ण-रेखा के समान शोभायमान होती है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि अपभ्रंशकाल में भी गीत-छन्द का प्रयोग होता था, छोटा साणोर गीत छन्द का ही एक भेद है। गीत छन्द के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है।

द्वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति यशोदामुद्रया रामभद्रः ।"

नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १, पृष्ठ २२६

परन्तु यह निश्चय है कि ये गीत १५ वीं शताब्दी में प्रचुरता से लिखे गए। इनका आरम्भ तो बहुत पहले हो चुका होगा परन्तु अपने पूर्ण विकास को ये डिंगल के मध्य काल में ही पहुँचे । आरंभ चाहे जब हो, अपभ्रंश के बाद ही हुआ मालूम होता है, क्योंकि अपभ्रंश के अन्त तथा डिंगल के आरम्भ में इनका कोई परिचय न मिल कर डिंगल के उत्कर्ष-काल अर्थात् बहुत बाद में मिलता है। इसलिए इन गीतों को डिंगल की निजी सम्पत्ति कह सकते हैं । इस अपूर्व एवं अमेय सम्पत्ति के लिए डिंगल को न तो अपनी माँ अपभ्रंश का मुँह देखना पड़ा और न सखी ब्रजभाषा का। अतएव निस्सन्देह यह गीत-रचना डिंगल कवियों के मस्तिष्क की एक अपूर्व उपज कही जा सकती है ।" †

डिंगल के कवियों ने संस्कृत के अनेक छन्दों का भी प्रयोग किया है और इसके लिये वे संस्कृत के छन्द-शास्त्र के ऋणी हैं, किन्तु गीत तो एक ऐसा छन्द है जिसका संस्कृत-साहित्य में भी कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, प्रान्तीय भाषाओं का तो कहना ही क्या ! गीत छन्द की उद्भावना डिंगल-कवियों की ओर से छन्द-शास्त्र को बड़ी भारी देन है। रघुनाथरूपक और रघुवरजसप्रकास आदि ग्रन्थों में गीत के अनेक भेदों का निरूपण हुआ है । केशवदास जैसे कवि को यदि डिंगल के गीत-छन्द का पता होता तो संभव है वे अपनी 'राम-चन्द्रिका' में कहीं इस छन्द का भी अवश्य प्रयोग कर जाते। मैं तो समझता हूँ, डिंगल के इस गीत-छन्द का प्रयोग, चाहे परीक्षण के लिये ही सही, खड़ी बोली में भी किया जाना चाहिए ।

---

† देखिये नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १४-अंक २ में 'डिंगल भाषा' पर श्री गजराजजी ओझा का लेख पृ० १३०-१३१

डिंगल के गीत छन्द को सफलतापूर्वक खड़ी बोली हिन्दी में भी ढाला जा सकता है, इसके निदर्शन-स्वरूप साहित्यरत्न श्री पतरामजी गौड़ 'विशद' एम० ए० की मार्मिक पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं। डिंगल के विभिन्न गीत छन्दों को लेकर यदि गौड़जी हिन्दी में अपना एक कविता-संग्रह प्रकाशित कर दें तो हिन्दी-जगत् छन्द के एक नूतन विधान से परिचित हो जाय।

हार भी तुम्हारी हो गई जीत

(१)

न गोमायु गरजें न खरगोश झूमें न
हर्ष के विल्लियाँ गीत गावें।
आज मृगराज जो ऊँघ से जग उठे
(तो) सुप्त वनराजि को फिर जगावे।

(२)

खिसकते अभ्र को स्कंध पर झेल कर
कड़कती तड़ित् पर बीज बाही।
नगाड़े बजे तब बींद ज्यों झूमता
राह गुमराह क्यों आज राही॥

(३)

पुष्प की माल तो बहुत से पहनते
आंत की माल किस कंठ लहरी
अश्व की पीठ पर रुंद्र हुंकारता
सो गया आप ही आज प्रहरी॥

(४)

मुंड की माल तो रुद्र भी पहनता
किन्तु नववधू की मुंडमाला

लाडली लटों से गले में बांध कर
कर गया काम आश्चर्यवाला ॥

(५)

ब्याह तो सदा संपन्न होते रहे (पर)
बीच भाँवर उठा जूझना सीख ।
दान के मान का मान खंडित किया
खुशी से शीश की दे गया भीख ॥

(६)

अग्नि में स्नान कर रक्त में डूब कर
कलम-तलवार से लिख गया गीत ।
मरण-उत्सव बना, तीर्थधारा बना
हार भी तुम्हारी हो गई जीत ॥

प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् एवं डिंगल साहित्य के मर्मज्ञ स्व किशोरसिंहजी बारहठ ने भी 'मर्यादा' के किसी अंक में अभिमन्यु चक्रव्यूह के सम्बन्ध में खड़ी बोली में गीत छन्द लिखा था 'गीत' शब्द को देख कर यह भ्रान्त-धारणा हो सकती है कि डिंग के गीत भी गाये जाते होंगे किन्तु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। डिंग के गीत गाये नहीं जाते थे, वे चारणों द्वारा धारा-प्रवाह एक विशे लय से पढ़े जाते थे, बोले जाते थे। इनकी ललकार ऐसी होती थी उससे युद्धार्थ बड़ा प्रोत्साहन मिलता था। वीर-गीत सुना कर शूर तन चढ़ाना ही चारण कवि का प्रमुख लक्ष्य होता था। डिंगल इन गीतों में वीर-भावना का अच्छा चित्रण हुआ है। उदाहरण लिए निम्नलिखित पंक्तियों को लीजिये :—

चक्रवतियां आपै चाँपावत
मंडियाँ मरण तणों नीमन्त ।

भाजाड्यो हाथ भगवत रै
(तो) भाजाड़ो मोनैं भगवन्त ॥

अर्थात् चाँपावत वलू चक्रवर्ती राजाओं से कहता है—मरने के निमित्त रण मंड जाने पर यदि भगाना परमेश्वर के हाथ की बात है तो वह मुझे भगावे, तब मैं जानूं परमेश्वर को! भगवान को भी इस प्रकार की ललकार वीर के सिवाय और कौन सुना सकता है? डिंगल के अधिकांश गीत युद्ध-वीरा तथा दानवीरों को लेकर लिखे गये हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य विषयों से सम्बन्ध रखने वाले गीत मिलते ही नहीं।

शान्त रस से सम्बन्ध रखने वाले अच्छे गीत डिंगल में मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए निम्न लिखित मार्मिक पंक्तियाँ रखी जा सकती हैं—

"असिया रहा पग्ग आफळता
मदझर खळहळता मैंमन्त।
वहळो धणी सिंगासण वाळो
पाळो होय हालियो पंथ
× × ×
पवन ज जाय पवन विच पैठो
माटी माटी माँहि मिळी।"

अर्थात् घोड़े पृथ्वी को खुरों से खोदते ही रह गये, खलबलाते मदमस्त हाथी ज्यों के त्यों धरे रहे। सवारी के अभ्यास वाला, सिंहासन वाला वह पैदल ही उस लोक का पथिक बना जहाँ से लौट कर कोई नहीं आता। 'साथ न चाली हेक सळी।' पवन पवन में जा मिला, कंचन-सी काया मिट्टी में परिवर्तित हो गई, मिट्टी मिट्टी में जा मिली।

इस प्रसंग को पढ़ कर निम्नलिखित मार्मिक सवैये का अनायास

स्मरण हो आता है :—

"बाँधे रहे बटना घनाये रहे जेवरन
अतर फुलेलन की सीसियाँ धरी रहीं ।
तानी रही चाँदनी सोहानी रही फूल सेज
मखमल तकियन-पंगती परी रहीं ।
'प्रतापसिंह' कहै तात-मात के पुकार रहे
नाह नाह कूकत वे सुन्दरी खरी रहीं ।
खेल गयो योगी हाय ! मेल गयो धूल बीच
चूर ह्वै मसान खेत खोपरी परी रही ॥" ⊛

डिंगल गीत सामान्यतः छोटे होते हैं। एक गीत में प्रायः चा[र] दोहले होते हैं और प्रत्येक दोहले (दूहे) में चार चार चरण होते है[ं।] छोटे गीतों में तीन तीन दोहलों (१२ पंक्तियों) के गीत मिलते [हैं] तथा बड़े गीतों में चालीस पंक्तियों से अधिक के गीत भी प्राप्त हैं किन[्तु] आदर्श गीत चार दोहलों अथवा १६ पंक्तियों में ही समाप्त हो जात[े] हैं। बड़े से बड़ा गीत कितने दोहलों में समाप्त हो जाना चाहिए, इ[स] सम्बन्ध में कोई नियम मेरे पढ़ने में नहीं आया किन्तु यह निश्चित [है] कि एक गीत में तीन से कम दोहले नहीं होते। डिंगल गीत के सभ[ी] दोहलों में एक ही भाव की आवृत्ति भाव-पुष्टि के लिए प्रायः देख[ी] जाती है। आलंकारिक भाषा का आश्रय लेकर प्रकारान्तर से वह[ी] भाव कहा जाता है। कुछ गीत ऐसे भी मिलते हैं जिनमें आलंका[र]

⊛ कबीर के निम्न पद से मिलाइए—

'हम को उढ़ावे चदरिया चलती बिरिया
प्रान राम जब निकसन लागे उलट गई दोउ नैन पुतरिया
भीतर से जब बाहर लाये छूट गई सब महल अटरिया
चार जने मिलि खाट उठाइन रोवत लै चले डगर डगरिया
कहत कबीर सुनो भाई साधो संग चली वह सूखी लकरिया ।'

रिकता नहीं मिलती, केवल इतिवृत्त मिलता है। ऐसे गीत इतिहास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, काव्य की दृष्टि से उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं समझा जाता। मात्रा आदि की दृष्टि से डिंगल के सब दोहले प्रायः समान होते हैं किन्तु किसी किसी गीत के प्रथम दोहले के प्रथम चरण में कुछ मात्राएँ या वर्ण अधिक देखे गये हैं। यह सच है कि डिंगल गीतों में अतिशयोक्ति की मात्रा कम नहीं रहती किन्तु अतिशयोक्ति को हटा कर यदि उनसे काम लिया जाय तो इतिहास के लिए भी अमूल्य सामग्री इन गीतों में मिल सकती है। राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री ओझाजी तक ने गीतों की ऐतिहासिक उपयोगिता* को स्वीकार किया है। स्वर्गीय श्री मेघाणीजी के शब्दों में "यह सत्य है कि ये गीत विशुद्ध इतिहास का चित्रण नहीं करते थे किन्तु प्रजा-जीवन की अनेक मार्मिक घटनाओं तथा तात्कालिक परिस्थितियों पर लोक-हृदय की समीक्षा का विवरण इन गीतों में मिल जाता है। इतिहास के शुष्क कंकाल को इन गीतों ने लोकोर्मियों के सजीव रुधिर-मांस से आपूरित कर दिया है।" ×

डिंगल गीतों की एक प्रमुख विशेषता है वैण सगाई। यह एक प्रकार का शब्दालंकार है जिसके अनुसार सामान्यतः किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उस चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिलता है। जैसे—

"रूड़ी देह वणी नहँ रहसी
घट में सोचो घणी घणी।

---

* सामान्यतः प्रत्येक डिंगल-गीत के प्रारम्भ में गीत के विषय तथा रचयिता के नाम का उल्लेख मिलता है। इससे भी गीत-लेखकों के इतिहास-बोध की ओर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रहता।

× They often clothe the dry or doubtful bones of history with living flesh of popular sentiment.

यहाँ प्रथम चरण के 'रूड़ी' और 'रहसी', द्वितीय चरण के 'घट' और 'घणी', तृतीय चरण के 'पाछी' और 'पूछे' तथा चतुर्थ चरण के 'त्यागोड़ी' और 'तणा' में वैण सगाई है। वैण-सगाई के विस्तृत विवेचन के लिए डिंगल-भाषा के 'रघुनाथ रूपक' आदि रीति ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। वैण सगाई नामक अलंकार का उल्लेख न संस्कृत के ग्रन्थों में हुआ है, न राजस्थानी को छोड़ कर अन्य किसी भाषा में इसका प्रयोग किया गया है। अलंकार के क्षेत्र में वैण सगाई डिंगल कवियों की विशिष्ट उद्भावना है और अलंकार शास्त्र को उनकी एक महत्त्वपूर्ण देन है।

ऊपर के विवेचन से यह न समझा जाय कि केवल डिंगल के गीतों में ही वैण-सगाई के नियम का निर्वाह किया जाता है; वैण सगाई का नियम तो डिंगल की रचना-मात्र के लिए लागू होता है। डिंगल में रचना की जाय तो प्रत्येक चरण का पहला अक्षर उस चरण के अंतिम अक्षर से मिलना चाहिए—यह कितना बड़ा बंधन है पर डिंगल रचना में प्रायः इस नियम का पालन किया गया है। हाँ, यह अवश्य है कि कालान्तर में वैण सगाई के अनेक प्रकार बनते चले गये जिससे काव्य-रचना करने वालों को भी सुविधा होती रही। किसी नियम का भी यदि स्वाभाविक विकास होता रहे तो उसमें कृत्रिमता और जड़शीलता नहीं आने पाती।

यहाँ पर सहज ही यह प्रश्न उठ सकता है कि राजस्थान के डिंगल-कवियों को वैण-सगाई के बंधन को स्वीकार करने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? कुछ विद्वानों का मत है कि वास्तविक डिंगल साहित्य तो चारणों का गीत-साहित्य ही है और इस गीत-

ही नहीं सकता। इन चारण गीतों में राग, रागिनी और वाद्य यन्त्रादिकों की आवश्यकता नहीं होती थी। अन्य बातों के साथ साथ नाद-वैभव उत्पन्न करने के लिए चारण कवि वैण-सगाई तथा अनुप्रास की योजना किया करते थे। विभिन्न दोहलों में एक ही भाव की जो आवृत्ति देखी जाती है उसका भी रहस्य यही जान पड़ता है कि "चारणी रचना का हेतु विगत उपस्थित करना नहीं था, बल्कि एक ही भावना को उठा कर शब्द-गुंफन द्वारा शौर्य आदि जागृत करना ही मुख्य उद्देश्य था। लोक गीतों की तरह सब वस्तुओं का ब्यौरा देने का अवकाश यहाँ नहीं। रचनाकार की दृष्टि में इतिहास का विगत-वार वर्णन महत्त्वपूर्ण नहीं, उसका उद्देश्य तो नाद तथा प्रसंग की जमावट करके शूरातन चढ़ाना था।" *

गीत की भाँति दोहा भी राजस्थान के कवियों का लाड़ला छन्द रहा है और राजस्थानी जनता ने तो इसे ही सर्वाधिक अपनाया है। इसे तो 'दशम वेद' कह कर इसकी गौरव-गरिमा का बखान किया गया है। छंद-शास्त्र की दृष्टि से दोहे के भेद-प्रभेदों का उल्लेख डिंगल के रीति ग्रन्थों में हुआ है किन्तु वर्ण्य-विषय को लेकर भी दोहे के अनेक प्रकार राजस्थान में प्रचलित हुए जिनमें से कुछ यहाँ दिए जाते हैं:—

रंग दूहा—'धन्य धन्य' या शाबाशी के अर्थ में 'रंग है, रंग है' कहने की प्रथा राजस्थान में है। किसी के शौर्य आदि की प्रशंसा में 'रंग रंग' के प्रयोग द्वारा जो दोहा कहा जाता है उसे 'रंग रा दूहा' कहते हैं। उदाहरणार्थ—

"ल्यायो अमर लिवाय, मेछां पग रूट माँडतो
सतियाँ सुजस सवाय, बसियो लुग रँग रँग बलू।"

अर्थात् शत्रुओं को तलवार के घाट उतार कर बलूजी अमरसिंह के

* धरती नुं धावण (स्वर्गीय श्री मेघाणीजी)

शव को ले आये जिसे लेकर उनकी रानी चिता पर बैठ कर भस्म हो गई। वीर बलूजी भी इनके बाद शत्रुओं से लड़ते हुए स्वर्गवासी हुए। "रंग है, रंग है", ऐसे बलूजी के लिए।

परिजाऊ दूहा—परिजाऊ शब्द का प्रयोग वीर रस से संबन्ध रखने वाले किसी गीत, दोहे अथवा कवित्त के लिए हो सकता है—विशेषतः उन छन्दों के लिए इस शब्द का प्रयोग समुचित है जिनमें वीरों ने शरणागत रक्षा का अथवा अपने सम्मान की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा दी हो। उदाहरणार्थ—

सूरा सोत उजाड़ में, भूंडण पोहरा देत
उठ रै कंत निदाळवा, कटक हिलोळा लेत।

अर्थात् शूकर जंगल में सोया हुआ था, शूकरी पहरा दे रही थी। क्षत्रिय-कुमारों के आखेट-दल ने शूकर को चारों ओर से घेर लिया। तब शूकरी ने कहा—हे निद्रालु पति, उठो, शत्रु-दल समुद्र में उठती हुई लहरों की तरह हिलोरें ले रहा है। इस पर शूकर ने उत्तर दिया—

तू जा भूंडण भाकरां, हूँ जाऊँ रणघट्ट
महल रुवाणौं पदमणी, (कै) मांस वखेरूं हट्ट।

अर्थात् हे शूकरी! तू तो पहाड़ों में चली जा और मैं युद्धक्षेत्र में जाता हूँ। या तो शत्रुओं को मार कर उनकी प्रियतमाओं को रुलाऊँगा अथवा युद्ध में स्वयं प्राण देकर शत्रुओं के घर घर गोठ के साधन जुटा दूँगा। यह सुनते ही शूकरी बोल उठी—

सुण सूरा भूंडण कहै, कुल अपणों लाजंत।
इण धरती रो ऊपन्यों, तीतर नहिं भाजंत॥

मैं युद्ध में न जाऊँ, यह हो नहीं सकता, ऐसा करने से हमारा कुल लज्जित होगा। इस धरती का उत्पन्न हुआ तो तीतर भी प्राण-रक्षा के लिए भग नहीं सकता, फिर मेरी तो बात ही क्या!

सिन्धु दूहड़ा—ये दोहे वीरोचित सिन्धु राग में ढोलियों के द्वारा गाये जाते थे। युद्ध में जाते समय और युद्ध के अंदर इन दोहों के गाये जाने की प्रथा थी। उदाहरणार्थ—

सार वहंतां साहिवो, मन माया न धरन्त।
जाणा खंखेरी खालड़ी, तापस मढी तजन्त॥

विसहर (विसर) दूहा—'विसहर' शब्द-उन दूहों, गीतों अथवा अन्य छन्दों के लिए प्रयुक्त होता है जिनमें किसी के अनौचित्य की भर्त्सना की जाती है। 'विसहर' दूहों के अनेक उदाहरण 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' शीर्षक पुस्तक में दिये जा चुके हैं। इसलिए विस्तार-भय से यहाँ अन्य उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में दूहे और गीतों का ही विशेप प्रयोग हुआ है, इसलिए उक्त दोनों छन्दों के सम्बन्ध में यहां कुछ विस्तार के साथ चर्चा की गई है। वहुत से गीत और दूहे ऐसे मिलते हैं जिनके निर्माताओं के संवन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त न हो सकी। इस विपय में विशेप अन्वेपण और अनुसंधान की आवश्यकता है। यह भी संभव है कि वहुत से कहावती दूहों के निर्माताओं का पता तक न चले। किन्तु फिर भी इस दिशा मे प्रयत्न अपेक्षणीय एवं वांछनीय है।

शौर्य, दानशीलता, स्वामिभक्ति आदि को लेकर इस पुस्तक के उपाख्यानों का वर्गीकरण किया गया है। इस प्रकार के वर्गीकरण की विशेप उपयोगिता यह है कि ऐसा करने से किसी गुण विशेष से संवन्ध रखने वाले सव उपाख्यान एक ही स्थान पर पढ़ने को मिल जाते हैं जिससे पाठक के मन पर उसका संश्लिष्ट प्रभाव पड़े विना नहीं रहता।

शौर्य से संवन्ध रखने वाले उपाख्यानों की प्रचुरता राजस्थानी साहित्य में मिलती है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि शौर्य

राजस्थान का अभिन्न अंग-सा बन गया था। वह शौर्य केवल पुरुषों तक ही सीमित नहीं था, यहाँ की वीर नारियों ने भी मौका पड़ने पर अपने अद्भुत शौर्य का परिचय दिया था। राजस्थान की वीरांगनाओं ने जौहर की धधकती हुई ज्वाला में जहाँ अपने प्राणों की आहुति दी, वहां हाडी रानी जैसी बहुत सी वीर नारियों ने हाथ में चमचमाती हुई तलवार लेकर वीरता-पूर्वक शत्रु-सेना का सामना भी किया था।

हिन्दी के बहुत से कवियों ने भी राजस्थान में प्रचलित अनेक शौर्य-संबन्धी उपाख्यानों को अपने काव्य का विषय बनाया है। यहाँ एक उपाख्यान को 'कुरुक्षेत्र' के यशस्वी कवि श्री दिनकर के शब्दों में ही पढ़िये--

"अम्बर (जयपुर) के महाराज जयसिंह का विवाह कोटा राज्य की राजकुमारी हरावती के साथ हुआ था। रानी हरावती गौरव-शालिनी राजपूत-रमणी थीं और ससुराल में भी अपने पितृ-राज्य का ही लिबास पहना करती थीं। उस समग्री के लिबास में एक चीज 'जूप' कहलाती थी जो ओढ़नी या चादर के किस्म की होती थी। अम्बर वालों ने बहुत पहले ही दिल्ली के बादशाह (सुलतान) और दिल्ली राजघराने के साथ विवाह-संबन्ध स्थापित कर लिया था। दिल्ली की रहन-सहन को अपनाने वाला पहला राजस्थानी राज्य अंबर ही था, जहाँ की स्त्रियाँ भी अपने स्वदेशी लिबास को पिछड़ा हुआ और पुराना जानकर दिल्ली के लिबास को अपनाने लगी थीं। महाराज जयसिंह की इच्छा थी कि उनकी महारानी भी कोटा के भद्दे लिबास को छोड़ कर नये ढंग का लिबास पहनें, जो दिल्ली के अनुकरण पर राजघराने में चल रहा था किन्तु महाराज की हिम्मत नहीं हो रही थी कि वे रानी के सामने अपनी इच्छा प्रकट कर दें

आखिर एक दिवस रानी का कुछ प्रसन्न मुख पाके,
हँसी-हँसी में राजा बोले कैंची एक उठाके—

देवि ! थान-भर जूप आपका है कुछ मुझे खरता
इसमें तो दब कर रह जाती है सारी सुन्दरता।
जरा देखिये आँवर की सुँदरियों का परिधान
भला, आज कल कौन ओढ़ती तीस हाथ का थान।
अच्छा हो, दें छोड़ आज से यह पोशाक पुरानी,
नई काट के वस्त्र करें धारण आँवर की रानी।
अगर हुक्म हो, काट गिराऊँ यह कोटा का भूल,
आँवर का परिधान आज से रानी करें कबूल।
आगे कहें-कहें कुछ तब तक चमकी तेज कटार,
कोटा की सिहनी काँपती हुई उठी हुँकार—
"सावधान हों महाराज, बोलें सँभाल कर बोली,
कोटा की बेटी सह सकती ऐसी नहीं ठिठोली,
दिल्ली में बिकतीं जो पोशाकें इज्जत के मोल,
पहना करें उन्हें आँवर के महाराज जी खोल।
नहीं चाहिए मुझे आपका यह अमूल्य परिधान,
कोटा की बेटियाँ पहनती हैं इज्जत-सम्मान।
वह सम्मान गुँथा है इसके तार-तार के साथ,
खबरदार जो कभी लगाया फिर चादर पर हाथ।
याद रहे, रखते हैं जैसी कैंची राजकुमार,
उससे कहीं तेज चलती है कोटा की तलवार।"

किस प्रकार दो वीर राजपूतों ने अकबर बादशाह के सामने अपनी शक्ति की परीक्षा दी थी, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपाख्यान वीर-भावना के इतिहास में अमर हो गया है :—

"दो वीर राजपूत अकबर बादशाह के दरबार में नौकरी के लिए उपस्थित हुए। दोनों युवक समवयस्क, निर्भीक, साहसी और

दृढ़-निश्चयी-से लगते थे। बादशाह ने कुछ गर्व से, अभिमान से और अवहेलना से दोनों को देख कर मुस्कुराते हुए कहा— पहले दोनों अपनी अपनी शक्ति की परीक्षा दें। शक्ति की परीक्षा ! आश्चर्य-मिश्रित भावों में भरे ये शब्द दोनों के मुँह से सहसा एक साथ निकल पड़े। अस्त्र-व्यवसायी वीरों के पास तलवार लेकर प्राणों के साथ खेलने के सिवा शक्ति तथा वीरता का और प्रमाण हो ही क्या सकता था ? दोनों की विहँसती नजरें एकबार क्षणभर के लिए मिलीं। आँखों की मूक भाषा में ही दोनों ने हृदय की गूढ़ भाषा को पढ़ा; जैसे उसमें लिखा हो— जाति के गौरव तथा कर्मठ जीवन के प्रमाण के लिए प्राणों का क्या मूल्य ? म्यान से निकल कर दोनों की तलवारें क्षणभर के लिए मिलीं फिर साथ ही शून्य में, अधर में टिकीं मुड़ीं, घुमीं, अर्द्ध चन्द्राकार बनाती सनन्न्-सनन्न् करती जीभ-सी लप-लपातीं तड़ित से भी तीव्र गति से दायें-बायें, ऊपर-नीचे, शून्य में, वायु में अपना अस्तित्व खोती घूमती रहीं, फिर साथ ही दोनों के प्रतिद्वन्द्वी को जमीन पर सुला दिया।

बादशाह यह देख कर स्तब्ध-से रह गये। भरा दरबार जैसे आश्चर्य में डूब कर मूक बना था। इतने अत्यल्प समय मे यह अघटित घटना इस तरह अनायास घटेगी, यह किसी ने स्वप्न में भी न सोचा था। उस वीर जाति के प्रति बादशाह का हृदय श्रद्धा, भक्ति तथा सम्मान से गद्‌गद् हो गया जिसके ये दोनों सपूत आदर्श की टेक के लिए बिना किसी असमंजस के अपने प्राण तलवारों की नोक पर रख कर निर्भीक हँसते-हंसते मिट गये थे। बादशाह ने आगे बढ़ कर उस गरम-गरम रक्त का अपने हाथ से अपने सिर पर तिलक किया और भरे दरबार में प्रतिज्ञा की कि आज से वह इस जाति की आजन्म प्रतिष्ठा कर अनजान में हुए इस पाप का प्रायश्चित करेगा।

इतिहास साक्षी है कि इस प्रतिज्ञा-पालन ने अकबर को

कितना महान् बनाया और दोनों की वीर गति ने उनकी जाति को।"*

इस उपाख्यान को लेकर श्री दिनकर ने 'बल या विवेक' शीर्षक एक कविता लिखी है जिसका उपसंहार करते हुए आप कहते हैं :—

"दोनों कट कर ढेर हो गये पूरी हुई कहानी,
लोग कहेंगे, 'भला हुई यह भी कोई कुरबानी ?
हँसी-हँसी में जान गँवादो अच्छा पागलपन है,
ऐसे भी क्या बुद्धिमान कोई देता गरदन है ?'
मैं कहता हूँ, बुद्धि भीरु है बलि से घबराती है।
मगर वीरता में गरदन ऐसे ही दी जाती है।
सिर का मोल किया करते हैं जहाँ चतुर नर ज्ञानी,
वहाँ नहीं गरदन चढ़ती है, वहाँ नहीं कुरबानी।
जिसके मस्तक के शासन को लिया हृदय ने मान
वह कदर्य भी कर सकता है क्या कोई बलिदान ?"

बुद्धिवाद की दृष्टि में यद्यपि इस तरह का शौर्य भावोन्माद के अतिरिक्त और कुछ नहीं, तथापि विशुद्ध शौर्य का उपासक तो इस भव्य आत्मोत्सर्ग पर अपने आप को सौ जान से न्यौछावर कर देगा। कलावादी संप्रदाय का आलोचक जिस प्रकार कला के अतिरिक्त, कला का और कोई प्रयोजन स्वीकार नहीं करता, उसी प्रकार सच्चा शौर्य किसी बाहरी प्रयोजन को लक्ष्य में रख कर प्रवृत्त नहीं होता निश्चय ही नौकरी करना उक्त दोना राजपूतों के जीवन का चरम ध्येय नहीं था, नौकरी तो उनकी शौर्यमयी मनस्विता के पीछे मारी मारी फिरती थी।

जो प्राणों को प्यार करता है, वह प्राणों को खो बैठता है। इसीलिए अमर हो गये राजस्थान के वे राजपूत, जिन्होंने प्राणों का

* इस सम्बन्ध में देखिये नवम्बर १९४७ के 'किशोर' में प्रकाशित श्री हलधर चौधरी 'दीन' का 'शक्ति की परीक्षा' शीर्षक उपाख्यान।

कभी मोह नहीं किया। मैं दुनिया में राजस्थान के अतिरिक्त ऐसे किसी देश को नहीं जानता जहाँ उल्लासपूर्वक मरण-महोत्सव मनाया गया हो। धरती माता! वज्र-जैसी मांस-पेशियों वाले, फौलादी स्नायुओं वाले, पर्वत की तरह अडिग रहने वाले, देश और धर्म की रक्षा के लिए युद्ध की विभीषिकाओं से खेलने वाले तथा उच्चादर्शों की रक्षा के लिए प्राणों का व्यापार करने वाले वे साहस के पुतले क्या आज तेरे गर्भ में विलीन हो गये? राजस्थान के कवियों ने उनकी प्रतिमाओं के दर्शन कराये हैं, उनकी कुछ झलक प्रस्तुत पुस्तक के उपाख्यानों में देखने को मिलेगी।

किन्तु यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। राजपूतों में जब इतने स्पृहणीय गुण थे तो फिर भी यह देश पराधीनता की बेड़ियों में क्यों जकड़ दिया गया? इसका उत्तर देने के लिए दूर नहीं जाना होगा। राजपूतों में जहाँ अनेक गुण थे, वहाँ उनमें दोषों का भी अभाव न था। परस्पर ईर्ष्या और द्वेष के कारण राजपूत जाति का जो पतन हुआ, उससे इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। आन पर मरने वाले राजपूत एक दूसरे को नीचा दिखाने में ही गर्व और गौरव का अनुभव करने लगे थे। व्यक्तिगत ईर्ष्या और द्वेष की ज्वाला में बहुत से राजपूतों ने राष्ट्रीय भावना को भस्म कर दिया था। किसी केन्द्रीय शासन के न होने तथा राजपूतों में सच्चे नेतृत्व का अभाव होने के कारण भी आक्रमणकारियों ने बड़ा लाभ उठाया था जिसका बुरा फल समूचे राष्ट्र को भोगना पड़ा।

✓ किन्तु यहाँ पर एक बात स्वीकार करनी होगी। राजस्थान के चारण कवियों ने शासकों को सत्पथ पर आरूढ़ करने तथा उदात्त भावनाएँ जागृत करने में बड़ा भारी योग दिया था। भारतेन्दु से भी बहुत पहले राजस्थान के एक बाँकीदास नामक कवि ने (सं० १८३८—१८९०) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की राष्ट्रीय भावना को इस

प्रकार व्यक्त किया था—

"आयो अँगरेज मुलक रे ऊपर.........

राखो रे कीहिक रजपूती, मरदां हिन्दू की मुसलमाण।"

अर्थात् अँग्रेज जब इस देश पर चढ़ आये हैं तो इस देश में रहने वालों का— वे हिन्दू हों या मुसलमान — कर्तव्य है कि वे अपने शौर्य का प्रदर्शन करें।

ठि० बाठरड़ा (मेवाड़) के ठाकुर गुमानसिंह जी (सारंग-ोत) ने चारण कवियों की प्रशंसा में ठीक ही कहा था—

"नीति-मग चालैं ताहि कुंभत्थल हत्थल दे,
वप्प वप्प बोल कहो मन को बढ़ातो को।
कुमति कुदान धरे, आलस जँजीर जरे,
थान सूँ अलान छोरि जंगन पै जातो को।
रम्य-काव्य-तोदन ले, घेरि गम्य घत्वर में,
हेरि हेरि मर्म बोल तोमर लगातो को।
चारण सुहस्तिप न होते तो 'गुमान' कहै,
त्त्री-कुल-कुंभी हमें रोक राह लातो को॥"

इस कवित्त में जो रूपक बाँधा गया है, उसके अनुसार ... ुल को हाथी ठहराया गया है और चारण को महावत। गुमा... कहते हैं कि चारण रूपी कुशल महावत न होता तो हम त्त्र... हाथियों को सुमार्ग पर कौन चलाता ? महावत जैसे हाथी ... स्थल को 'वाप-वाप' कह कर (बिड़दा कर) थपथपाता ... प्रकार नीति पर चलने वाले न्यायपरायण त्त्रियों को ... साथ बिड़दा कर (प्रोत्साहित करके) उनके मन को कौन ... जैसे आलसी व बिगड़े हुए हाथी को महावत ठाण के खं... कर मैदान में ले आता है, वैसे ही जो कुमार्गी एवं घरों

वाले आलसी क्षत्रिय हैं, उन्हें लड़ाई के मैदानों में कौन उतारता? जैसे महावत अंकुश की मार से हाथी को घेर कर चौगान मे ले आता है, वैसे ही प्रभावशाली कविता रूपी अंकुश से प्रेरित करके क्षत्रियों को युद्ध-क्षेत्र में कौन लाता?

ऊपर के पद्य में जो स्वीकारोक्ति की गई है, उसमें अतिशयोक्ति का स्वर नहीं है, यह एक तथ्य-कथन है जिसको प्रामाणिकता प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत उपाख्यानो से सिद्ध हो सकेगी।

बंगाल हिन्दी मण्डल के सभापति महोदय की प्रेरणा से मैंने राजस्थानी कहावतों के संग्रह एवं संपादन का कार्य प्रारम्भ किया था। कहावतों का संग्रह करते हुए ही मुझे ऐतिहासिक कहावतें संग्रह करने की बात सूझी जिनका एक शतक 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' के नाम से पिछले वर्ष छप चुका है और दूसरा शतक 'राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान' के नाम से छप रहा है। कहावतों के अर्थ में 'ओखाणा' शब्द राजस्थान में प्रचलित है; गढ़वाली भाषा में कहावतों के लिए 'पखाणो' शब्द का व्यवहार होता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, 'ओखाणा और 'पखाणा' * दोनों शब्द 'उपाख्यान' के ही रूपान्तर हैं। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक में कहावत के अर्थ में मैंने उपाख्यान शब्द का ही प्रयोग किया है और इन कहावतों को मैंने जान-बूझ कर ही ऐतिहासिक न कहकर सांस्कृतिक उपाख्यान का नाम दिया है। सर जदुनाथ सरकार की Anecdotes of Aurangzeb जैसी पुस्तका में जिस सतर्कता के साथ ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा हुई होगी, वैसी सतर्कता संभवतः इस पुस्तक में न मिलेगी किन्तु फिर भी यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि राजस्थान का सांस्कृतिक

---

* बालापन ते निकट रहत ही सुन्यो न एक पखानो।— सूर

इतिहास इन उपाख्यानों में अवश्य सुरक्षित है। आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं, युद्ध-प्रणालियों में भी मौलिक परिवर्तन हो गये हैं, परमाणु-बम और रासायनिक युद्ध आज सुनाई पड़ने लग गये हैं किन्तु फिर भी स्वर्णिम अतीत में जो एक प्रकार का रोमांचक आकर्षण रहता है, उसकी अनुभूति इन उपाख्यानों से हुए बिना नहीं रहेगी और सब से बड़ी बात तो यह है कि अनेक मानवोचित आदर्शों के लिए प्रेरणा और स्फूर्ति इन उपाख्यानों से मिलती है।

अधिकांश उपाख्यानों में डिंगल-भाषा का प्रयोग हुआ है। पुस्तक के परिशिष्ट में डिंगल-भाषा में वर्ण-परिवर्तन आदि के संबन्ध में कुछ पृष्ठ जोड़ दिये गये हैं जिनसे इस भाषा से अपरिचित लोगों को डिंगल-भाषा के समझने में थोड़ी सहायता मिलेगी। किसी किसी उपाख्यान में ब्रज-भाषा का भी प्रयोग हुआ है किन्तु वह अत्यन्त विरल है।

इस अवसर पर बंगाल हिन्दी मण्डल कलकत्ता के अधिकारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना पवित्र कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने बड़ी कृपा कर बरजू बाई, चंडीदान जी, कविराजा श्यामलदास तथा महाराणा भीमसिंह की रुतियों सम्बन्धी उपाख्यानों को इस पुस्तक में सम्मिलित करने के लिए मुझे आज्ञा प्रदान की। प्रस्तुत पुस्तक के गोरखनाथ तथा लोहापांगळ संबन्धी दो उपाख्यान साहित्यरत्न प्रो० श्री पतरामजी गौड़ एम० ए० की सहकारिता में लिखे गये हैं किन्तु श्री गौड़जी को धन्यवाद देकर मात्र शिष्टाचार का पालन करना मैं नहीं चाहता। उक्त दोनों उपाख्यान बिड़ला सेण्ट्रल लायब्रेरी के संग्रहालय से लिये गये हैं जिनके लिए लेखक बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता है। कुछ उपाख्यान मुझे सुहृद्वर श्री नाथूराम जी खड्गावत (डूंगर कालेज

बीकानेर) की कृपा से प्राप्त हुए हैं जिनके लिए मैं आपका अत्यन्त उपकृत हूँ। ठा० सा० श्री ईश्वरदानजी आशिया से भी मुझे इस कार्य में बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। श्रीयुत सीतारामजी लालस से भी मुझे अनेक उपयोगी सूचनाएँ मिली हैं तथा कुँवर श्री जोगीदानजी कविया ने पद्यों के पाठ-संशोधन में बड़ा परिश्रम किया है। उक्त दोनों सज्जनों का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।श्रद्धेय पं० झाबरमल्लजी शर्मा से भी ऐतिहासिक कहावतों के इस संग्रह-कार्य में मुझे समय समय पर बड़ी प्रेरणा मिलती रही। मेरे छात्र श्री डूँगरसिंहजी देवड़ा के सौजन्य से मुझे 'चौहान कल्पद्रुम' नामक पुस्तक प्राप्त हुई जिससे भी अनेक उपाख्यान मैंने लिये। प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में जिन जिन ग्रन्थों से मुझे सहायता मिली है, उन सबके लेखकों का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ। इस कार्य में मुझे सर्वाधिक सहायता कुँवर श्री सुरजनसिंहजी शेखावत से मिली है जिन्होंने पृष्ठों पर पृष्ठ मुझे डाक द्वारा लिखकर भेजे जिनसे न केवल पद्यों के अर्थ-निर्धारण में ही सरलता हुई, बल्कि अनेक नये उपाख्यान भी मुझे प्राप्त हुए। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कुँवर साहब के लेखों से भी मैंने लाभ उठाया है। इन सबके लिए असंख्य वार धन्यवाद देकर भी मैं आपसे उऋण नहीं हो सकता।

अंत में लेखक राजपूताना विश्वविद्यालय के प्रति, जिसने प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में २५०) रु० की सहायता प्रदान की है, अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

मंगलाचरण

राजस्थान में पाबूजी राठौड़, हरभूजी सांखला, रामदेवजी तँवर, मांगलिया मेहाजी तथा गोगाजी चौहान—ये पंच पीरों के नाम से प्रसिद्ध हैं जैसा कि निम्नलिखित पद्य से प्रगट है—

> पाबू हरभू रामदे, मांगळिया मेहा ।
> पाँचों पीर पधारज्यो गोगाजी जेहा ॥

(क) पाबूजी का जन्म वि० सं० १३१३ तथा स्वर्गवास सं० १३३७ में हुआ था । उन्होंने प्रतिज्ञा-बद्ध होकर देवल चारणी की गायों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया था । कुछ लोगों का कहना है कि मारवाड़ में पहले पहल अरब से ऊँट लाने वाले पाबूजी ही थे । भोपे पाबूजी का गुण-गान करके अपना जीवन बसर करते हैं । उनके साथ एक बड़ी चादर रहती है जिस पर पाबूजी की वीर-गाथायें चित्रित रहती हैं । यह फड़ कहलाती है । राजस्थान में पाबूजी के पवाड़े बड़े चाव से सुने और गाये जाते हैं ।

(ख) हरभूजी सांखला राजपूत थे और राव जोधाजी के समकालीन थे । जोधाजी इन्हें बड़े महात्मा समझते थे । प्रसिद्ध है कि जोधाजी के सामने इन्होंने पहले से ही भविष्यवाणी कर दी थी कि तुम्हारा राज्य बीकानेर तक फैलेगा । अतिथि-सत्कार में तो ये अद्वितीय थे ।

(ग) रामदेवजी मारवाड़ के एक सत्यवादी वीर हो चुके हैं । कहते हैं कि भैरव नामक एक दुष्ट को मारने से रामदेवजी की ख्याति चारों ओर फैल गई थी । मुसलमान-हिन्दू

सभी इन्हें पूजने लगे और ये रामशाह पीर के नाम से पुकारे जाने लगे। सं० १५१५ में इन्होंने मारवाड़ के रूणेचा गाँव में जीवित समाधि ले ली। राजस्थान के अनेक स्थानों में रामदेवजी के उपलक्ष में मेले भरते हैं और देवता की भाँति इनकी पूजा होती है।

(घ) मेहाजी ईसेन के जागीरदार थे। जैसलमेर के राजा ने एक बड़ी फौज लेकर इन पर आक्रमण किया और ये बड़ी वीरता से लड़ते हुए काम आये।

(ङ) रामदेवजी की भाँति गोगाजी भी राजस्थान में देवता की तरह पूजे जाते हैं। वि० सं० १३५३ में बड़ी वीरता से लड़ते हुए ये काम आये।

इन पाँचों वीरों के करामाती होने तथा मुसलिम सभ्यता के साहचर्य के कारण ही संभवतः इन पाँचों वीरों के लिए 'पीर' शब्द का प्रयोग होने लगा *। श्री के० एम० मुन्शी ने अपने एक लेख में लिखा है "Ultimately Ghogha was accepted as a Pir when Gujars became Muslims." —The Gurjara Problems. Bhartiya Vidya. Jan. 1946.

शौर्य

एक

राव लूणकरणजी संवत् १५६१ में बीकानेर की गद्दी पर बैठे। संवत् १५८३ में जैसलमेर के रावल तथा सिन्ध के नवाब की सम्मिलित सेना ने दोसी नामक स्थान पर लूणकरणजी पर आक्रमण

*'राजस्थान' में पं० झाबरमल्लजी शर्मा का लेख सं० १९९३ वर्ष २ संख्या १

किया। कहते हैं कि ठीक लड़ाई के समय बीदावत सरदार अपनी सेना सहित मोरचे पर से चाल चल गये, अन्य बहुत से सामंत युद्ध-क्षेत्र से कायरता दिखला कर भग गये अथवा अलग खड़े खड़े देखते रहे किन्तु लूणकरणजी ने ऐसी विषम परिस्थिति में भी एक सच्चे राजपूत की भाँति रणाङ्गण में प्राण देना ही श्रेयस्कर समझा। गोरोजी नामक चारण ने उनके दृढ़ निश्चय को इस प्रकार पद्यबद्ध किया है—

"जाइ सकइ सोइ जाहु, रहइ सोइ मेरा साथी।
जब लगु घट महिं सांसु, देउँ ना लगइ न हाथी॥"...

अर्थात् अपयश का भार अपनी पीठ पर लाद कर जो कोई लौटना चाहे वह लौट जाय, जो मेरा साथी है वह तो युद्ध-क्षेत्र में रह कर मेरा साथ देगा ही। मेरे शरीर में जब तक एक भी साँस बाकी है तब तक मैं अपना हाथी किसी को नहीं दूंगा।

लूणकरणजी के भाई राजधर ने भी इस युद्ध में क्षत्रिय-धर्म का पालन करना ही उचित समझा। गोरो के शब्दों में—

"अमर न को संसारि, साथि तउ किछू न जाई।
दान खग्गु सत सील, अन्ति ए होहि सहाई॥
कमधज कुलइहि निकलङ्क नर, भणि गोरउ सांचा कह्या।
राजधरि राइ संग्राम किय, सबदु एकु जुगि जुगि रह्या॥"

अर्थात् इस संसार में अमर कोई भी नहीं हैं और न कोई वस्तु मृत्यु के समय साथ ही जाती है। दान, शौर्य, सत्य और शील—ये गुण ही अन्त समय में सहायक होते हैं। गोरो की उक्ति है कि राठौड़ों के कुल में सभी मनुष्य निष्कलङ्क होते हैं। राजधर ने जो वीरतापूर्वक संग्राम किया, उसके यश की गाथा युग युग में व्याप्त हो गई। प्राण देकर भी इस योद्धा ने अपने कुल को कलङ्कित न होने दिया।

दो

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद दिल्ली की जो भयंकर लड़ाई हुई उसमें उनकी दोनों महारानियों ने भी बड़ी वीरतापूर्वक युद्ध करके अपने प्राण दिये थे। महारानी हाडीजी की अद्भुत वीरता का वर्णन निम्नलिखित गीत में हुआ है :—

दिन मांचै द्वन्द खूंदवै दमगल, पतसाही चढ़ जलल पड़ै।
हाडी चढ़ फौजां हलकारै, लाडी जसवंत तणी लड़ै ॥१॥
ऊगै दीह यवन चढ़ आवै, सुहड़ां भड़ाँ लियाँ वहु साथ।
औरंगसाह धसै किम आघो, भागो ही सुणजे भाराथ ॥२॥
भाऊ जिसा अरोड़ा भाई, भड़ जसवँत जेहा भरतार।
चिगथां लड़ण चलावै चोटां, सत्रसल सुता बजावै सार ॥३॥
पख दोउँ विमल सासरो पीहर, जेठ अमर सत्रसाल जणो।
रोणी पाणी धरम राखियो, तागो हिन्दुस्थान तणों॥४॥

अर्थात् घोड़े पर चढ़ कर हाडी रानी ने शत्रु-सेना को ललकारा। उस दिन घमासान युद्ध हुआ जिसमें जसवंतसिंह की प्रियतमा ने शत्रुओं से लोहा लिया ॥१॥

सूर्योदय होने पर अपने बहुत से योद्धाओं को लेकर औरंगजेब चढ़ आया परन्तु वह आगे किस तरह बढ़े? वह युद्ध से भगता हुआ ही सुना गया ॥२॥

हाडी रानी ने इस युद्ध में तलवार के जो हाथ दिखलाये इसमें आश्चर्य की क्या बात थी? जिसके भावसिंह हाडा जैसा शूरवीर भाई हो, छत्रसाल जैसा योद्धा जिसका पिता हो और महाराज जसवंतसिंह जैसा जिसका पति हो उसके लिए इस प्रकार निर्भीकता-पूर्वक युद्ध करना स्वाभाविक ही है ॥३॥

पीहर और ससुराल दोनों पक्ष जिसके उज्ज्वल थे, राव अमरसिंह

जैसे जिसके जेठ थे ऐसी हाडी रानी ने हिन्दुस्तान की परम्परा, धर्म और कीर्ति को उज्ज्वल रखा ॥४॥

तीन

सम्राट् अकबर ने एक बड़ी भारी सेना लेकर चित्तौड़गढ़ को घेर लिया। दुर्गरक्षक जयमल ने इस प्रकार चित्तौड़ की रक्षा की जिससे बादशाह के दाँत खट्टे हो गये। कई महीने बीत जाने पर भी वह किले पर अपना अधिकार न कर सका। कूटनीतिज्ञ बादशाह ने चालाकी से काम लेना चाहा। उसने जयमल से कहलवाया कि यदि एक बार आप हमें चित्तौड़ सौंप दें तो हम आपको ही यहाँ का सूबेदार बना देंगे। जयमल ने जो उत्तर लिख कर भेजा उसे राजस्थान के कवि ने इस प्रकार पद्य-बद्ध किया है :—

जैमल लिखै जवाब जद, सुणजे अकबर साह।
आण फिरै गढ़ ऊपरां, तूटां सिर पतसाह ॥
है गढ़ म्हारो हूं धणी, असुर फिरै किम आण।
कूंची गढ़ चित्तौड़ री, दीधी मुज्झ दिवाण ॥

अर्थात् जयमल उत्तर देते हैं कि हे अकबर शाह सुनिये, मेरे सिर के टुकड़े-टुकड़े होने पर ही चित्तौड़गढ़ पर आपकी दुहाई फिर सकती है। और आप यह खूब कहते हैं कि चित्तौड़ तुम्हें सौंप दूंगा और यहाँ का सूबेदार बना दूंगा! चित्तौड़ तो मेरा ही है और मैं ही यहाँ का स्वामी हूँ। एकलिंग के दीवाण महाराणा ने इस किले की कुंजी मुझे सौंप दी है, इसलिए मेरे जीते जी यहाँ मुगलों की दुहाई कैसे फिर सकती है?

कहते हैं कि जयमल ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जायेंगे तब तक मैं शत्रु-सेना से लड़ता रहूँगा।

किन्तु बादशाह की संग्राम नामक बंदूक से जब जयमल घायल हो गये तो उनको इस बात का पश्चात्ताप हो रहा था कि न तो मैं पैदल ही शत्रुओं से लोहा ले सकता हूँ और न घोड़े पर चढ़ कर ही उनसे युद्ध कर सकता हूँ। प्रवाद है कि इस पर कल्लाजी राठौड़ ने जयमल को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया था ताकि यह वीर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके।

राजस्थान में कौन ऐसा है जो जयमल और फत्ता के नाम से परिचित नहीं ? जयमल और फत्ता की वीरता से अकबर इतना प्रभावित हुआ था कि उसने आगरे में इन दोनों वीरों की प्रस्तर-मूर्तियाँ निर्मित करवाईं। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने इन मूर्तियों को देखा था जिससे स्पष्ट है कि सं० १७२० तक ये मूर्तियां विद्यमान थीं। चित्तौड़ के किले को संबोधित कर जयमल ने जो उद्‌गार निम्नलिखित गीत में प्रगट किये हैं वे उसके सर्वथा अनुरूप हैं।

चवै एम जैमाल चीतोड़ मत चलचलै, हेडहूँ अरी दल न दूं हाथै।
ताहरै कमल पग चढ़ै नह ताइयाँ, माहरै कमल जे खवां माथै ॥१॥

धड़क मत चत्रगढ़ जोधहर धीरपै, गंज सत्रां दलां करूं गजगाह।
भुजां सूं मूझ जद कमल कमलां भिलैं, पछै तो कमल पग देह पतसाह ॥२॥

दूद कुल आभरण धुहड़हर दाखवै, धीर मन दरै मत करै धोखो।
प्रथी पर माहरो सीस पड़ियां पछै, जाणजै ताहरै सीस जोखो ॥३॥

साच आखो कियो वीर रै सांखली, हाम चित पूरवै काम हथवाह।
पुर अमर कमंध जैमाल पाधारियो, पछै पाधारियां कोट पतसाह ॥४॥

अर्थात जयमल इस प्रकार कहता है कि हे चित्तौड़! तू विचलित न हो, मैं शत्रु-दल को भगा दूंगा, तुझे शत्रुओं के हाथ न दूंगा। तेरे सिर पर शत्रुओं के पैर तब तक नहीं पड़ेंगे जब तक मेरे कन्धों पर मेरा सिर है ॥१॥

जोधा का वंशज धीरज बँधाता है कि हे चित्तौड़ ! धड़क मत, शत्रुओं के दलों को नष्ट कर हाथियों से मैं उन्हें रौंदवा डालूँगा। भुजाओं से अलग होकर जब मेरा सिर (महादेव की रुण्ड-माला के) मस्तकों में जा मिलेगा तभी बादशाह तेरे सिर पर पैर रख सकेगा ॥२॥

दूदा के कुल का आभूषण और धूहड़ का पोता जयमल किले से कहता है कि धैर्य धारण कर, मन में न डर और किसी प्रकार के संशय में न रह। तेरे शिर पर आँच तभी आयेगी जब मेरा सिर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा ॥३॥

हे सिंह के समान वीर जयमल ! तूने अपने वचनों को अच्छी तरह पूरा कर दिखाया। अपने हाथों से बाण चला चला कर तूने अपने मन की इच्छा पूर्ण की। राठौड़ योद्धा जयमल जब स्वर्ग सिधार गया तभी बादशाह किले में प्रविष्ट हो सका ॥४॥

चार

पाबूजी मारवाड़ के कोलूमढ़ नामक ग्राम के निवासी थे। उन्हीं का समकालीन जिनराज नामक खींची क्षत्रिय जायल ग्राम में राज्य करता था। उसी ग्राम में देवलजी नामक एक चारणी निवास करती थीं जो देवी का अवतार समझी जाती थीं। इन देवलजी के पास अद्भुत गुणों से संपन्न एक काळमी नामक घोड़ी थी। जिनराज खींची ने देवलजी से काळमी घोड़ी माँगी परन्तु उन्होंने देने से इन्कार कर दिया। अतः जिनराज इनसे शत्रुता रखने लगा और उनका गोधन हरण करके नाना प्रकार से उनको कष्ट देने लगा। इससे देवलजी अपनी संपूर्ण संपत्ति लेकर पाबूजी के निकटस्थ स्थान में आगईं। काळमी

घोड़ी की प्रशंसा सुन कर पाबूजी ने जब उसे माँगा तो देवलजी ने कहा कि मेरी गायों की रक्षा के निमित्त जो अपना मस्तक देने को तैयार हो उसी को यह घोड़ी दी जा सकती है । पाबूजी ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया।

पाबूजी के गुणों की प्रशंसा दूर दूर तक फैल गई थी। उसे सुन कर सिन्ध देश के उमरकोट नगर के सोढा क्षत्रिय की कन्या ने उन्हें वरने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी के अनुसार कन्या के पिता ने पाबूजी के पास विवाह का सँदेशा भेजा। इसके उत्तर में पाबूजी ने कहा कि मैं अपना मस्तक देवलजी को दे चुका हूँ. मेरे साथ विवाह करने से क्या लाभ होगा ? जब कन्या ने यह बात सुनी तो उसने कहा कि मैं केवल वीर पाबूजी की पत्नी कहलाना चाहती हूँ, और कुछ नहीं। अंत में विवाह स्थिर हो गया। उमरकोट में जब पाबूजी भाँवर ले रहे थे तो उनको खबर मिली कि जिनराज खींची देवलजी की गायें घेर कर ले चला है। भाँवर के बीच से ही पाबूजी उठ खड़े हुए और खींचियों से युद्ध करने के लिए कालमी घोड़ी पर सवार होकर निकल पड़े। बड़ी वीरता से लड़ कर पाबूजी देवलजी की गायों को छुड़ा कर ले आये किन्तु मालूम हुआ कि एक बछड़ा नहीं आया था और पीछे रह गया था। वे उसे फिर लेने को गये और वहीं बड़ी वीरता से लड़कर काम आये। सोढी राजकन्या ने भी सती होकर अपने धर्म का निर्वाह किया।

धर्मप्राण प्रतिज्ञापालक वीर पाबूजी राजस्थान में देवता की तरह पूजे जाते हैं। पाबूजी के संबन्ध में अनेक दोहे और गीत राजस्थान में प्रसिद्ध हैं। आसिया मोड का 'पाबू प्रकाश' नामक एक ग्रंथ भी छप चुका है। एक डिंगल गीत जो अत्यन्त प्रसिद्ध है यहाँ दिया जाता है-

प्रथम नेह भीनो महाक्रोध भीनो पछै, लाभ चमरी समर झोक लागै ।
रायकँवरी वरी जेण वागां रसिक, वरी वद कँवारी नेण वागै ॥१॥

हुवै मंगल धमल दमंगल घीरहक, रंग नूठो कमध जंग रूठो।
सघण वूठो कुसुम चोह जिण मोड़ सिर, विषम उण मोड़ सिर लोह वूठो ॥२॥

करण अखियात चढ़ियो भलाँ कालमी, निवाहण वयण भुज बाँधिया नेत।
पँवाराँ सदन वरमाल सूँ पूजियो, खलाँ किरमाल सूँ पूजियो खेत ॥३॥

सूर वाहर चढ़े चारणाँ सुरहरी, दूतैं जस जितै गिरनार आबू।
विहँड खल खीचियाँ तणा दल विभाड़े, पो ढयो सेन रण भोम 'पाबू' ॥४॥

अर्थात् पहले तो प्रेम रस में भीगा और फिर क्रुद्ध हुआ; जिसे विवाह-मंडप में युद्ध का झोंका लगा उस रसिक ने जिस चोगे (विवाह-वस्त्र) से राजकुमारी का पाणि-ग्रहण किया था उसी वस्त्र से ताजा फौज से युद्ध किया ॥१॥

जिस समय मंगल गीत गाये जा रहे थे, उसी समय युद्ध की चिनगारी उठी और वीर पुरुषों ने युद्ध के लिए हल्ला किया। जिस समय वह राठौड़ वीर विवाह-रंग में प्रसन्न हो रहा था, उसी समय उसे युद्ध के लिए क्रुद्ध होना पड़ा। जिसके मोड़ (सेहरे वा मुकुट) पर खूब फूलों की वर्षा हुई थी उसी मोड़ पर तलवारें चलीं ॥२॥

जो परमारों के महलों में वरमाला से पूजा गया था वही शत्रुओं की तलवारों से पूजा गया। उस वीर ने अपनी प्रसिद्धि करने और अपने वचनों का निर्वाह करने के लिए हाथ में भाला लेकर श्रेष्ठ कालमी घोड़ी पर सवारी की ॥३॥

उस शूरवीर ने चारणों की गायों की सहायता के लिए चढ़ाई की। उसका यश तब तक रहेगा जब तक गिरनार और आबू रहेंगे। पाबू वीर ने खीचियों की फौज का नाश करके भगा दिया और स्वयं रणभूमि में अपनी शय्या लगा ली ॥४॥*

---

* बाँकीदास ग्रन्थावली (तीसरा भाग) पृ० ९९-१०२

पाँच

सवरसिंह सिरोही के महाराव सुरताणसिंह का मंत्री था। अकबर बादशाह ने जब सिरोही पर आक्रमण किया था, उस समय दताणी के प्रसिद्ध युद्ध में सवरसिंह ने बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। दुरसा आढा के शब्दों में—

"सवर महाभड़ मेरवड, तो ऊभां वरियाम।
सीरोही सुरताण सूं, कुण चाहै संग्राम॥"

प्रवाद प्रचलित है कि एक बार सवरसिंह के मन में युद्ध छोड़ कर चले जाने का विचार पैदा हुआ। जिस रास्ते से होकर वह जा रहा था, वहाँ कुछ असाधारण सुन्दरी स्त्रियाँ आनन्द मना रही थीं किन्तु एक बाला अलग खड़ी खड़ी अफसोस कर रही थी। पूछने पर पता चला कि वे सब स्वर्ग की अप्सरायें हैं और योद्धाओं को वरने के लिए उस स्थान पर एकत्र हुई हैं। जो बाला अफसोस कर रही थी, उसका कारण यह था कि वह देवड़ा सवरसिंह को वरण करना चाहती थी, किन्तु जब उसे पता चला कि सवरसिंह युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर जा रहा है तो उसके दुःख की सीमा न रही। अप्सराओं ने यह भी कहा कि वे ही योद्धा शूरवीर कहलाने योग्य हैं जो युद्ध-भूमि से कभी पीठ नहीं दिखाते। सवरसिंह ने कहा कि यह सब अफवाह मात्र है, मैं प्राणों के भय से कभी पराङ्मुख नहीं हो सकता—

'होय जग अँधेरो पछम दम ऊगसी, भगे का मेदनी दधी मत छोड़सी।
रमण हठ रंभ अब फेम चंत्या करे, वचन सुण रंभ रा एम सवरो अखै॥

अर्थात् सूर्य चाहे पश्चिम दिशा में उदय होने लगे और संसार में सर्वत्र अंधकार छा जाय, पृथ्वी चाहे अपनी स्थिरता छोड़ दे, समुद्र भी चाहे अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर दे किन्तु सवरा कभी युद्ध-भूमि को नहीं छोड़ सकता। इसलिए हे रंभा! तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

ऊपर का उपाख्यान जहाँ सबरसिंह के शौर्य का परिचायक है, वहाँ इससे मध्ययुगीन राजपूती मान्यताओं पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। टॉड साहब के द्वारा प्रश्न किये जाने पर एक क्षत्रिय सरदार ने बड़े सजीव विश्वास के स्वर में कहा था कि युद्ध-भूमि में असाधारण शौर्य दिखलाने वाले योद्धा मृत्यु के बाद देवलोक में सुरांगनाओं के साथ सुख भोगते हैं।

छः

जोधपुर के राव चंद्रसेण बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के पुरुष थे। चित्तौड़ के महाराणा प्रताप की तरह इन्होंने भी कभी अकबर बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की। डिंगल गीत की निम्नलिखित पंक्तियों में यही भाव दिखलाया गया है—

पसँग अदग पड़ियालग, खरहँड तणी न लग्गी खेह।
रांण उदैसी तणो अरेहण, राव मालदे तणो अरेह ॥१॥
तुरियै विरात खत्रिवट अजड़े, असपत दल् रहिया अगिण।
कल्ँक विना कुंभेण कलोधर, चाव कलोधर कल्ंक विण ॥२॥
अस बाजाड़ साह धर असमर, दियो न दुहुवै हीणो दाव।
रवि सिरखौ मेवाड़ै रांणो, रवि सिरखौ जोधाणो राव ॥३॥

इन्होंने अपने घोड़ों के दाग नहीं लगने दिया और न इनकी तलवार के ही दाग (जंग) लगा। तलवार में जंग तब लगता है जब वह काम में न आवे, इनकी तलवार तो शत्रुओं के सिरों के साथ खेल करती रहती थी। ये कभी युद्ध से भगे नहीं, इसलिए सैन्य-दल के प्रयाण की रज भी इनके कभी नहीं लगी। उदयसिंह का पुत्र प्रतापसिंह और राव मालदेव का पुत्र चन्द्रसेण—ये दोनों कभी शत्रुओं से दबे नहीं ॥१॥

बादशाह की सेना के असंख्य होने पर भी इनके घोड़े उसी स्थिति में (बिना दाग लगे) रहे और तलवार के बल से इन्होंने क्षत्रियत्व की रक्षा की। कलंक रहित या तो कुंभा का वंशज प्रतापसिंह रहा या बाघा का वंशज चंद्रसेण ॥२॥

घोड़ों के दाग लगा कर अथवा बादशाह के चरणों में तलवार रख कर इन दोनों वीरों ने कभी हीन भाव नहीं दिखलाया। मेवाड़ का राजा प्रतापसिंह और जोधपुर का राव चंद्रसेण दोनों सूर्य के समान हैं ॥३॥

मात

किसी क्षत्रियाणी के यहाँ एक शिक्षक की नियुक्ति हुई। एक बार शिक्षक महोदय क्षत्रिय-कुमार को निम्नलिखित पंक्तियाँ पढ़ा रहे थे—

मृग नयनी के नैन में मयन अयन मन होय।

क्षत्राणी के कानों में ज्योंही ये शब्द पड़े, उसने तुरन्त शिक्षक को अपने पास बुलाया और कहा—स्त्रैण बना देने वाली इस प्रकार की शिक्षा से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यदि आपको पढ़ाना है तो मेरे कुमार को इस तरह के दोहे सिखाइये :—

सोढै ऊमरकोट रै, यों बाही अबयट्ट* ।
जाणै बेहू भाइयाँ, आध करी वे वट्ट ॥

* 'अबयट्ट' तलवार का नाम है। तलवार के नामों से संबन्ध रखने वाला निम्नलिखित डिंगल गीत नीचे दिया जाता है—

खांडाहल् खाग कुधारो खांडो, खड्ग त्रिजड़ अैराक खग ।
नाळकरा धूर समसेर सुजलग, किरमाल् र धाराळ झग ॥१॥
तेग करद धाराळी नेगो, धाराळी मारँग विजड़ ।
चंद्रहास पाखर असि चीतल्, मार कुजड़ किरमर मुजड़ ॥२॥

अर्थात् ऊमरकोट के सोढे ने जब तलवार चलाई तो शत्रु के इस प्रकार दो बराबर बराबर टुकड़े हो गये मानो दो भाइयों ने दो बराबर हिस्सों में अपनी सम्पत्ति का बँटवारा कर लिया हो।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ठीक ही कह गये हैं—

"धन धन भारत की छत्राणी"

आठ

कहते हैं कि प्राचीन काल में सिर कट जाने पर भी शूरवीर कबन्ध के रूप में लड़ा करते थे। बजेसिंह का नाम सिरोही के देवड़ा चौहानों में प्रख्यात है। इसका प्रतिस्पर्द्धी सोलंकी सांगा था। वि० सं० १६४८ में सांगा की तलवार से इसका सिर कट जाने पर भी धड़ घोड़े पर से नहीं गिरा और घोड़ा वह धड़ लेकर बावली पहुँच गया था—

"धड़ ले गया पाछला धाड़ायत, वैरायत ले गया वदन।"

राजस्थान के कवि का विश्वास था कि आसमान में विमानों पर बैठकर देव-गण इस प्रकार के दुर्लभ दृश्य को टकटकी लगा कर देखा करते हैं।

हैजम डोडहती चन्द्रहासा, केवाण रु पाती करद।
धजवड़ करमचँडी धारूजल, सत्रांटा करणी सरद ॥३॥
बाँक जनेव प्रहास वखाणूँ, पांडीस र नारांच पढ।
मूँठाली समसेर महाधड़, अत्रयट इम वाढ़ कढ ॥४॥×

×यह गीत कुँवर श्री सुरजनसिंहजी शेखावत के सौजन्य से प्राप्त हुआ है

नौ

यदि शत्रु किसी क्षत्रिय राजा पर आक्रमण करता तो वह क्षत्रिय योद्धा जान की बाजी लगा कर भी अपनी भूमि की रक्षा का प्रयत्न करता था। यहाँ का चारण भी युद्धार्थ प्रोत्साहन देते हुए कहता—

"दोयणां हूंत मांटीपणो दाखज्यो।
उधारो राखज्यो मती आँटो॥"

अर्थात् शत्रुओं से लोहा लेकर अपने पुरुषत्व का परिचय देना और वैर को उधार मत रखना। कायरता दिखला कर अपने कुल को कलंकित करना सबसे हेय कर्म समझा जाता था। धन चला जाय तो फिर मिल सकता है, स्त्री और भूमि भी दुबारा मिल सकती है किन्तु गई हुई प्रतिष्ठा फिर नहीं मिलती।* इसलिए सच्चे राजपूत अपने आत्म-गौरव की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे डालने में भी कभी हिचकिचाते नहीं थे। प्राणों के प्रति इस प्रकार की उदासीन भावना के कारण योद्धा जिस धैर्य और शौर्य का परिचय देते थे वह सचमुच अद्भुत है। अकेला राजपूत अनेक शत्रुओं को मौत के घाट उतार देता था।

सिरोही के महाराव मानसिंह बड़े वीर राजा हो चुके हैं। शाही सेना के साथ इन्होंने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं। इनके विषय में किसी कवि का कहा हुआ एक कहावती दोहा प्रसिद्ध है:—

"एकला सो ना भला, भला सो मानो राव।
दीधा दूजणमाल रै, मर सीली रै पाव॥"

अर्थात् अकेले की कोई हस्ती नहीं किन्तु महाराव मानसिंह ने

* धन गयां फिर सा मिळे, त्रिया गई मिल जाय।
भोम गई फिर से मिळे, गई पत कबहूँ न आय॥

अकेले ही जो किया वह कोई दूसरा क्या करेगा? इसलिए वे तो शाबासी के पात्र हैं ही। दुर्जनसाल के इस पुत्र ने अकेले ही दिल्ली पर अपना पैर रखा।†

दस

जोधपुर के महाराज मानसिंहजी के समय में विद्रोहियों ने किले को घेर लिया। महाराज ने कहा कि आक्रमणकारियों को अब किसी तरह हटाया नहीं जा सकता। यह सुन कर महाराज के एक सरदार कीरतसिंह सोढा ने प्रण किया कि आक्रमणकारियों को मैं अभी दूर किये देता हूँ। यह वीर बड़ी वीरता से लड़ता हुआ काम आया और आक्रमणकारियों को भी घेरा उठाना पड़ा। कीरतसिंह की कीर्ति का स्मारक निम्नलिखित सोरठा राजस्थान में प्रसिद्ध है—

तन झड़ खागाँ तीख, पाड़ घणां खल पोढियो।
किरतो नग कोडीक, जड़ियो गढ जोधाण रै॥

अर्थात् कीरतसिंह का शरीर तीक्ष्ण तलवारों से घायल हुआ और वह बहुत से शत्रुओं को मार कर धराशायी हुआ। कोटि मूल्य वाले रत्न की भाँति वह जोधपुर के किले में जड़ा हुआ है।

ग्यारह

बूँदी के राव अर्जुन असीम साहसी और बड़े शूरवीर थे। चित्तौड़ के एक बुर्ज की रक्षा के लिए जब आप नियुक्त थे, उस समय बहादुरशाह ने बुर्ज के नीचे के भाग में सुरंग लगवाई और उसके भीतर

† इस दोहे से जान पड़ता है कि अवश्य ही इसमें किसी विशेष ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत है।

बारूद भर कर आग लगा दी। विपत्ति को सम्मुख आता हुआ देख कर राव अर्जुन ने अपनी तलवार निकाली और वीरतापूर्वक लड़ते हुए प्राण दे दिये। इस घटना का स्मरण दिलाने वाला निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है—

सोर कियो बहु जार, घर परबत आडो खिका।
तैं काढी तलवार, अधिपतिया हाडा अजा॥

अर्थात् जब बारूद भर कर आग लगा दी गई तब उस सुरंग से निकलती हुई अनलराशि में एक पत्थर रख और उस पर खड़े होकर हे हाडाराज अर्जुन ! तूने अपनी तलवार निकाली। (धन्य है तेरा यह स्वर्गारोहण !)

बारह

कागळो बलोच नामक एक बड़ा शूरवीर था जो ४० गाँवों का स्वामी था। उसके एक पिडसंधी नाम की लड़की थी। जब वह ग्यारह वर्ष की हुई तो पिता ने उसको अपने पास बुला कर कहा— सिकारपुर में पठानों के यहाँ घोड़ी है, मैंने उसे लेने के लिये दो तीन बार आक्रमण किया पर पठानों ने मेरे दाँत खट्टे कर दिये। मैं तो अब वृद्धावस्था के कारण असमर्थ हो चला, मेरे कोई पुत्र होता तो सिकारपुर से पठानों की घोड़ी ले आता और मेरे दिल की हविस पूरी हो पाती ! पिडसंधी ने कहा कि जो मैं आपकी लड़की हूँ तो पठानों की घोड़ी अवश्य लाऊँगी। पिडसंधी ने एक वर्ष तक घोड़े की सवारी की और पक्की सवार हो गई। अस्त्र शस्त्र चलाने में भी उसने दक्षता प्राप्त कर ली। फिर पुरुष का वेश बना कर वह पठानों की घोड़ी छीनने के लिए निकली। उधर संयोग से अपने ३०० सवारों को लेकर भींवे ऊढाणी नामक एक राजपूत सरदार ने भी सिकारपुर के पठानों

की इसी घोड़ी को छीनने का निश्चय किया। रास्ते में पिउसंधी और इस राजपूत सरदार का मिलन हुआ तो पिउसंधी ने कहा—मैं पठानों की घोड़ी छीनने के लिए निकला हूँ। भींवां बोला—मैं भी इसी काम से चल पड़ा हूँ किन्तु मेरे साथ तो ३०० सवार हैं, आपके साथ कितनी सेना है? यह सुन कर पिउसंधी ने कहा—

कंता फिरज्यो एकला, किसा विराणां साथ।
थारा साथी तीन जण, हियो कटारी हाथ॥

तेरह

जोधपुर के महाराज अभयसिंह के शासन-काल में जयपुर के महाराज जयसिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई की और बिना लड़े ही उन्हें विजय प्राप्त हुई। जयपुर की सेना में से किसी ने वखरी के ठाकुर केसरीसिंहजी से ताना मारते हुए कहा कि हमारी तोपें तो खाली ही जयपुर जा रही हैं। यह सुन कर केसरीसिंहजी युद्ध करने के लिये तैयार हो गये और वीरतापूर्वक लड़ते हुए उन्होंने अपने प्राण दे दिये। इस प्रसंग का निम्नलिखित दोहा राजस्थान में कहा जाता है—

केहरिया करनाल, जुड़तो नहँ जयसाह सूँ।
श्रो मोटी अवगाल, रहती सिर मारू-धरा॥

अर्थात् हे केसरीसिंह! यदि तुम जयसिंह से युद्ध न करते तो मारवाड़ पर यह बड़ा कलङ्क सदा के लिए रह जाता। विना युद्ध किये तुमने जयसिंह को न जाने दिया।

चौदह

जोधपुर के महाराज अभयसिंहजी ने बीकानेर पर आक्रमण किया। बीकानेर महाराज ने ठा० कुशळसिंहजी को सहायता के लिए बुलाया। यद्यपि बीकानेर महाराज से उनकी अनबन हो गई थी किन्तु स्वामी पर संकट पड़ा हुआ देख कर उन्होंने बीकानेर की सहायता करना ही अपना कर्तव्य समझा और वे दल बल सहित आ पहुँचे। ठा० कुशळसिंहजी की सहायता के कारण अभयसिंहजी को इस युद्ध में सफलता न मिल सकी और हताश होकर उन्हें जोधपुर लौटना पड़ा। इस संबन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

कुसलो पूछै कोट नै, बिलखो किम बीकाण ?
मो ऊभाँ तो पालटै, भलै न ऊगै भाण ॥

अर्थात् कुशलसिंह किले से पूछता है कि हे बीकानेर ! तू क्यों बिलख रहा है ? मेरे खड़े रहते तुझे कोई गिरा दे तो फिर सूर्य उदय नहीं हो सकता।

पन्द्रह

ईसरदास मेड़तिया राठौड़—वीर जयमल का छोटा भाई था। जयमल की अध्यक्षता में जो चित्तौड़ का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था उसमें ईसरदास ने अद्भुत पराक्रम दिखलाया था। कहते हैं बादशाह अकबर ने हाथियों को शराब पिला कर और उनकी सूंडों में तलवारें देकर राजपूतों के नाश के लिए उन्हें आगे बढ़ाया था पर वीर राजपूत फिर भी पीछे नहीं हटे, उन्होंने हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन किया। ईसरदास भी इसी युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ काम आया। निम्नलिखित पंक्तियों में राजस्थान का कवि इस योद्धा के वीरत्व की बलैया ले रहा है—

देवासुर दीठ रमाइण दीठौ, वांचै नारद सूर विवेक ।
विहु' वांहां दाखतौ वलाक्रम, ईसर जिसौ न दीठौ एक ॥१॥

ऊघड़िया जु मरण प्रवि ईसर, खल खीजियै चढावे खाग।
गजदल एक धरण दिस गुड़िया, गजदल एक गया गैणाग ॥२॥

चकव्रन किय चोल वाजियै चौरंगि,राव राठौड़ विसम गति रूप ।
ईसर ! नमौ तुहाली थासति, गैण दिसा नाखै गज-रूप ॥३॥

अर्थात् नारद और सूर्य विवेक (की बात) वाँचते हैं (कहते हैं)-देवताओं और असुरों का युद्ध देखा, रामायण का युद्ध भी देखा पर दोनों भुजाओं से पराक्रम दिखाता हुआ ईसरदास जैसा योद्धा एव भी नहीं देखा ॥१॥

हे ईसरदास ! मृत्यु-पर्व के समय शत्रुओं पर खीझ कर तलवार (की धार) पर चढ़ा कर जिन हाथियों के समूहों को तूने उछाला उनमें से कई पृथ्वी की ओर लुढ़क चले और कई आकाश में चले गये ॥२॥

भयंकर रूप वाले राठौड़ राजा (ईसरदास) ने युद्ध मचने पर आँखों को लाल कर लिया। हे ईसरदास ! तेरी शक्ति को नमस्कार है जो तू हाथियों को आकाश की ओर फेंकता है ॥३॥

बादशाह अकबर ने भी ईसरदास के वीरत्व को देख कर धन्य धन्य कहा—कर्ण को भी कृष्ण ने धन्य धन्य कहा था—

"कहै पतिसाह धन धन्न ईसर क्रहां,
करन नूं क्रिसन धन-धन्न कहियौ ।"*

सोलह

महाराज जसवन्तसिंहजी की मृत्यु के बाद जब दिल्ली की लड़ाई हुई तो ठा० रणछोड़दास ने राठौड़ वीर दुर्गादास से कहा कि तुम तो जोधपुर जाकर शिशु अजीतसिंह की रक्षा करो, मारवाड़ की लाज तुम्हारी ही भुजाओं पर है—मैं थोड़े से राजपूत योद्धाओं को लेकर दुश्मनों से लोहा लूँगा और उन्हें रोके रहूँगा।

रण दुर्गा नै आखियो, सुणो सूर सिरताज।
दिल्ली भारथ मो भुजाँ, तोय मुरद्धर लाज॥

किन्तु फिर भी यह राठौड़ वीर मरने के लोभ का संवरण नहीं कर सका और इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई।

दुर्गादास की रणोत्सुकता द्रष्टव्य है।

सत्रह

जोधपुर के महाराज मानसिंहजी के समय में नीमाज के ठाकुर सुलतानसिंह की हवेली पर फौज भेजी गई थी। सुलतानसिंह अपने भाई सूरसिंह सहित सं० १८७७ में बड़ी वीरता से लड़कर काम आया। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पद्य राजस्थान में प्रसिद्ध है—

कोई पहरै बकतर पकतर, कोई बाँधे गाती।
सूरसिंह सुलतानसिंह रो, जड़ै उघाड़ी छाती॥

अठारह

महाराज मानसिंह के देहान्त के समय डूंगरावत सरदारसिंह ने पूछा—कौन से कुमार को हम मालिक मानें? तब महाराज मानसिंह ने कहा था—

जाहर कांती जाण, भाण तणा सुरताण है।
पोरस मेर प्रमाण, सो मालक थांरो सही॥

अर्थात् जिसका पौरुप मेरु के समान प्रकट हो चुका है, वह भाण का पुत्र सुरताण तुम्हारा मालिक है।

सिरोही के महाराव सुरताणसिंह तीर चलाने में वड़े कुशल थे। १० साल की उम्र में ही इनका तीर अच्छे तीरंदाज के तीर से भी अधिक फासले पर जा पहुँचता था। इनका पिता महादेव का परम भक्त होने से 'भजनी भाण' के नाम से प्रसिद्ध था। महाराव मानसिंह के समय में स्वयं अकवर वादशाह ने सिरोही पर चढ़ाई की थी, तव सुरताण भाणवत के तीर से वह घायल हुआ था जिसके लिये कवि ने कहा है—

पर्वत जतो प्रमाण, नख जतरो अंनस नहीं।
त्रां सहजां सुलताण, वींधो भाणनरंदवत॥

अर्थात् यदि तुलना की जाय तो एक तरफ वड़ा पहाड़ (वादशाह अकवर) और दूसरी तरफ नख का प्रमाण (अर्थात् वालक सुरताण) था, तव भी हे भाण नरेन्द्र के पुत्र! तूने सहज में सुलतान को-वेध डाला।

उन्नीस

शेखावाटी के शार्दूलसिंहजी की वीरता के संवन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रायः सुना जाता है—

सादूलो जगराम रो, सिंघल वुरी वलाय।
रामदुहाई फिर गई, व्हुकती फिरै खुदाय॥

शार्दूलसिंहजी की शक्ति दिन पर दिन बढ़ती गई। झुंझु
सिंघाना, नरहड़ आदि कई परगनों पर उन्होंने अपना अधि
जमा लिया था। इसके अतिरिक्त ८४ गाँवों के साथ उन्होंने सुलत
भी ले लिया था। उनके अधिकृत गाँवों और कस्बों की संख्या क
एक हजार तक पहुँच चुकी थी। शार्दूलसिंहजी के यश का व
किसी कवि ने निम्नलिखित रूप में किया है—

इण राजा सादूल पकड़ बून्दी विचलाई।
इण राजा सादूल लंक जिमि रिणी लुटाई॥
इण राजा सादूल लिया बैराठ सिंवाणा।
इण राजा सादूल दिया नरहड़ सिर थाणा॥ इत्यादि*

बीस

बाबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कामरान लाहौर का शा
बन बैठा। बीकानेर के राव जैतसी को अपने वश में करने की इ
से कामरान अपनी सेना सहित आगे बढ़ा। मुगल सेना ने भट
(आधुनिक हनुमानगढ़) के किले को चारों ओर से घेर लिया
खेतसी राठौड़ ने बड़ी वीरतापूर्वक लड़ते हुए अपने प्राण दे दि
मुगल सेना आगे बढ़ी। कामरान की ओर से राव जैतसी के प
संदेशा भेजा गया कि यदि वह दस करोड़ का द्रव्य और अपनी रा
हमारी विवाह में दे तो युद्ध रुक सकता है।

'दस कोडि द्रव्य वीवाह देहि।'

ये शब्द सुनते ही जैतसी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये—

बोल्लइ राउ साँभलि वयण,
दिव्वइ किया राता रयण।

* सीकर का इतिहास (पं० झाबरमल्लजी शर्मा कृत) पृ० ३८

ऐसी परिस्थिति में युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। प्रातः काल के समय मुग़ल सेना बीकानेर पहुँची। शत्रु की योजना को असफल करने के लिए राव जैतसी अपने वीर योद्धाओं सहित किले से बाहर निकल गया। राठौड़ भोजराज और कुछ भाटी सरदारों ने किले की रक्षा के लिए मर-मिटने और राजपूती आन-बान के निर्वाह करने का भार अपने ऊपर लिया।

भाले हाथ में लिये हुए चुने हुए कुल १०६ योद्धाओं को लेकर राव जैतसी युद्ध के लिए तैयार हुआ। वि० सं० १५६१ की मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थी को दोनों सेनाओं में लड़ाई छिड़ी—

पनर समत अेकाणव पक्खरि।
पुखि मागसिरि प्रथम पखि पूँवरि॥

इस युद्ध में राव जैतसी की जीत हुई और बहुत से मुग़लों को प्राण बचा कर लाहौर की तरफ भगना पड़ा जैसा कि नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट है—

सङ्खारि मीर मूगलाँ साख,
लाहउरि गयउ खेरावि लाख।
मुरधरा वधिय उच्छव मँडाण,
सिवहरिय गयउ घरि खुरासाण॥

अर्थात् हे मरुधरा! आज उत्सव मनाओ क्योंकि खुरासान के आक्रमणकारी, कामरान के मुग़ल आज परास्त होकर अथवा मरण-प्राय होकर अपने प्राण बचा कर लाहौर की तरफ भग रहे हैं।*

इक्कीस

रावल मल्लिनाथजी सलखाजी के पुत्र थे । ख्यातों के अनुसार सं० १४३१ में वे महेवा के स्वामी हुए थे। मल्लिनाथजी को लोग सिद्ध पुरुष मानते थे। कहा जाता है कि देवी ने इनको साक्षात् दर्शन दिया था । मल्लिनाथजी ने अपनी शक्ति द्वारा दूर तक अपना राज्य बढ़ा लिया था। मंडोवर के मुसलमानों ने मल्लिनाथजी से तंग आकर बादशाह के सामने अपना दुखड़ा रोया तो संवत् १४३५ में बादशाह ने सेना भेजी। सेनापति ने १३ तुंगे (दल) बाँध कर आक्रमण किया किन्तु मल्लिनाथजी ने उन सबको परास्त कर दिया । निम्न-लिखित प्रवादात्मक पद्य इस संबन्ध में प्रसिद्ध है :—

"तेरै तूंगा भांजिया, मालै सलखांणी"

अर्थात् सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने सेना के तेरह दलों को तोड़ दिया। कविराजा बाँकीदासजी ने इस संबन्ध में कहा है :—

भिड़ियौ मालौ छडच भत, रीदां सगत रही न।
फिल् तेरै तूंगा किया, अजड़ां तेरै तीन ॥

अर्थात मल्लिनाथजी इस अद्भुत रीति से लड़े कि मुसलमानों की सब शक्ति जाती रही। निश्चय ही उन्होंने उनके तेरह दलों को अपनी तलवारों से तीन तेरह अर्थात् तितर-बितर कर दिया।

बाईस

बीकानेर के महाराज रायसिंहजी (१६२८-१६६८) की गणना प्रसिद्ध युद्ध-वीरों और दानवीरों में की जाती है। कहते हैं एक चारण के दोहे से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे १ लाख रुपये दान में दे डाले थे। अपने जीवन में अनेक बार उन्होंने पराक्रम दिखलाया था और

क्रम दिखलाते हुए ही उनकी मृत्यु भी हुई थी। कहते हैं जब पद्म-ह मरणासन्न अवस्था में घायल होकर युद्ध-क्षेत्र में लेटे थे, रहठा-सेनापति जादूराय ने उनको देख लिया। जादूराय के भाई साँवतराय की मृत्यु पदमसिंह के हाथों हुई थी। जादूराय ने प्रतिशोध लेने का अच्छा अवसर समझ कर पदमसिंह पर वार किया। इस प्रहार से पदमसिंह की मूर्च्छा दूर हुई। उन्होंने जादूराय को घुटनों के नीचे दबाया और अपनी कटार उसकी छाती में भौंक दी। ऐसा करने में महाराज के भी प्राण-पखेरू उड़ गये। इस संबन्ध में निम्न-लिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :—

घावां बहु खेत पड्यौ नृप वूमत, वुध-हीणौ कीवी सिरवाह।
जठै पदम गिरतै जादम नै, गोडां तल दीनो गजगाह ॥१॥
कर जुध धरा रह्यौ करनाणी, बदखांरी आयौ चढ वाढ।
घोड़े हूँत लियां झल घांटी, देखत पार करी जमदाढ ॥२॥
मैंगळ तणी समापण मोजां, सकवां रयौ नहीं संसार।
अपसर अर जादू रै अंग में, करजुत मांहीं रयौ कटार ॥३॥
झुरसी निरखन अबळ हजारां, रीझां दियण सिरै दोय राह।
पड़तै पदम कमध पाटोधर, पाड़ लियौ दिखणयां पतसाह ॥४॥

तेईस

जहाँगीर ने अब्दुल्लाखाँ को सेना सहित मेवाड़-विजय के लिए भेजा। चचा सगरजी ने देश-द्रोही का कार्य किया और शत्रु-सेना को रास्ता बतला दिया। राणा अमरसिंह के पुत्र भीमसिंह ने निश्चय किया कि सदर ड्योढी पर जाकर यदि आक्रमण न करूँ तो मेरा भी नाम भीम नहीं। मध्यरात्रि में अचानक भीम के सवारों ने शत्रु-सेना पर आक्रमण कर दिया। मुगल सैनिकों के होश-हवास गायब हो

गये। 'चचा, ठहरो—मैं तुम्हारे ही लिये आया हूँ।' ये शब्द कहते हुए भीमसिंह ने सगर की ओर कटार फेंक कर मारी जो पाँव में लगी। भीमसिंह ने घोड़ों के दाँत तोड़ दिये, चिंघाड़ते हुए हाथियों की सूँडें उखाड़लीं।

राजस्थानी कवि ने निम्नलिखित गीत में भीमसिंह की वीरता का वर्णन किया है—

> जित लागा थार जिन्हें खूंदाळम, सूतो श्रणी सनाहां साथ।
> थापै सुरम जेहड़ा थाणा, भीम करै तेहड़ा भाराथ ॥१॥
>
> हुवौ पवाणां हाथ हिन्दुवां, असुर सिवार हुवै आराण।
> साह आलम मूकै साहिजादो, रायजादो थाप लियो राण ॥२॥
>
> मँडियो वाद दिल्ली मेवाड़ां, समहर तिको दिहाड़ै मींव।
> भव मन पैठो किसे भाखरै, भाखर किसै न विढ़ियो भींव ॥३॥

अर्थात् जहां जहां खुर्रम थाने डालता है वहाँ वहाँ वीर भीम शत्रुओं की कवचधारी सेना के साथ युद्ध करता है ॥ १ ॥

हिन्दुओं के हाथ से बहुत से मुसलमान मारे गये। बादशाह ने शाहजादे को और राणा ने राजकुमार को नियत किया ॥ २ ॥

दिल्ली और मेवाड़ में युद्ध शुरू हुआ। शत्रुओं ने पर्वतों को घेरा तो कौनसा पर्वत ऐसा था जहाँ जहां भीम ने उनसे मोर्चा नहीं लिया? ॥३॥

वीर अमरसिंह के पुत्र ने अपनी तलवार से शत्रुओं का संहार किया।

चौबीस

उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब के नाम पत्र भेज कर जजिया कर का विरोध किया था। औरंगजेब ने क्रुद्ध होकर

उदयपुर पर आक्रमण कर दिया। महाराणा ने उदयपुर छोड़ कर पहाड़ों पर अपना पड़ाव डाल दिया। महाराणा के पौलपात्र थे वीरवर नरूजी सौदा। वे भी उदयपुर छोड़ कर जब पहाड़ों पर जाने को तैयार हुए तो एक उमराव ने हँसी में कह दिया—आप तो यहां के पौलपात्र (द्वाररक्षक) हैं. ऐसी हालत में स्वामी के द्वार को सूना छोड़ कर चले जाना कहाँ तक उचित है? बात तो यद्यपि हँसी में कही गई थी किन्तु नरूजी के हृदय में ये शब्द चुभ गये और उन्होंने अपने स्वामी के द्वार की रक्षा करते हुए बलिदान हो जाने का निश्चय कर लिया। दाणेरायजी के मन्दिर पर (जो आजकल जगदीशजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है) मुग़ल सेना ने धावा बोल दिया। वीरतापूर्वक मंदिर की रक्षा करते हुए नरूजी काम आये। इस संबंध का एक छप्पय और एक गीत नीचे दिया जाता है—

छप्पय

सबल त्रिखै पतसाह, राण धरनी रीसायो।
उदियापुर ऊपरा उमँग, अवरँगसाह आयो॥
मुगलाँ हूं रण मंडे, छोह वीरा रस छायो।
सोदो व्रन-सिणगार, सांपड़े खाग सम्हायो॥
अमरवत बात राखण अमर, दळ विच उर दरियावरो।
पाड़ियो नरू पड़ियां पछै, देवळ दाणेराव रो॥

अर्थात् बादशाह बड़ी प्रवल सेना सजा कर राणा की धरती पर क्रुद्ध हुआ और उमंग में भर कर बादशाह औरंगजेब उदयपुर पर चढ़ आया। मुगलों से रण छिड़ने पर नरू के हृदय में वीर रस उमड़ पड़ा। उसने स्नान-ध्यान कर हाथ में कृपाण उठा लिया। अमरसिंह के पुत्र नरू ने सेना में समुद्र जैसा विस्तृत हृदय दिखा कर अपने यश को पृथ्वी में अमर कर दिया। नरू के धराशायी होने पर ही दाणेराव का मन्दिर विध्वंस हुआ।

गीत

कहियो नरपाल आवियां कटकां, धूण छड़ाल धरा पै धोल।
पोल वडा गज वाजि प्रामतो, पड़तै भार न छोडूं पोल ॥१॥
राजड़ कियो राण छल रूड़ो, कौंनो दे नीसरूं कठै।
अरि घोड़ो फोरण किम आवै, तोरण घोड़ो लियो तठै ॥२॥
आखा पीला करै ऊजला, सोदो खदां कलह सम्फ।
करग मांडिया नेग कारणैं, कलम ग्वांडिया नेग कज ॥३॥
उदियापुर सोदै अजरायल, किलमां हूं भाराथ कियो।
दत लेतो आवै दरवाजै, देवल जावै मरण दियो ॥४॥

अर्थात् जब शाही सेना उदयपुर पहुँची तो अपना भाला उठा कर और अपने पैरों को दृढ़ता से पृथ्वी पर जमा कर नरू ने कहा— जिस द्वार पर मैंने बड़े हाथी-घोड़े लिये हैं, विपत्ति के समय उस द्वार को मैं छोड़ नहीं सकता ॥१॥

महाराणा राजसिंहजी ने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया है, उससे किनारा करके मैं कहाँ निकल जाऊँ ? जिस द्वार पर मैंने तोरण का घोड़ा लिया है, उस द्वार पर शत्रु का घोड़ा क्यों कर फिर सकता है ? ॥२॥

नरूजी सौदा ने मुसलमानों से युद्ध कर अपने पीले अक्षतों को उज्ज्वल कर दिया। जिसने द्वार पर नेग प्राप्त करने के लिए महाराणा के सामने अपने हाथ फैलाये थे, उसी ने नेग की रक्षा के लिए मुसल-मानों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥३॥

उदयपुर के इस अमर सौदे ने मुसलमानों से युद्ध किया। जो दरवाजे पर आकर दान लिया करता था, उसने मन्दिर पर जाकर अपने शरीर का बलिदान कर दिया ॥४॥

पच्चीस

डूंगजी और जवा(ह)रजी बठोठ (शेखावाटी) के रहने वाले कछवाहा सरदार थे। ये दोनों काका-भतीजा होते थे और डाका डाला करते थे। जयपुर राज्य के विरुद्ध होकर जबरदस्त मालदारों को लूटते और गरीबों की परवरिश किया करते थे। डूंगजी-जवाहरजी संबन्धी प्रचलित गीत के अनुसार प्रसिद्ध है कि एक बार डूंगजी जब अपनी ससुराल में थे तो वे धोखे से कैद कर लिये गये और अंग्रेजों के द्वारा आगरे के किले में भेज दिये गये। तब जवाहरजी ने अपने साथी करनिया मीणा और लोटिया जाट की सहायता से डूंगजी को आगरा जेल से छुड़ा लिया। बाद में ये नसीराबाद (अजमेर) की छावनी से ५२ हजार रुपये लूट कर ले भागे। बीका-नेर के महाराज रतनसिंहजी ने जवाहरजी को शरण दी। डूंगजी जब जोधपुर गये तब सदरलैंड साहब कुछ अंग्रेजी और कुछ जयपुर राज्य की फौज लेकर जोधपुर को गये। जोधपुर के महाराजा ने डूंगजी को उक्त साहब बहादुर के सुपुर्द कर दिया। निम्नलिखित दोहा इस संबन्ध में कहा जाता है:—

> दियो डूंगसिंघ जोधपुर, उजर अली आंबेर।
> रतन जुहारो रक्खियो, बंके बीकानेर।

कहते हैं कि अंग्रेजों ने डूंगजी को वापिस जोधपुर के सुपुर्द कर दिया था और वहीं वर्षों तक रह कर डूंगजी ने अपनी इहलीला समाप्त की।

शेखावाटी की ओर अब भी डूंगजी-जवाहरजी के गीत बड़े चाव से गाये और सुने जाते हैं। डूंगजी की अपने साथी के प्रति कही हुई इस उक्ति को देखिये—

> "दो दिन नै मर ज्यावां लोटिया, हुनी करैगी बात।"

वापू७ तणो नगारो वागो, जागो रा कमधजियाम जागो ॥२॥
मदप्याला पीवण घण मोला, भिलम साज अतरां पड़ भोला।
ढालां खड़ी हुई सुण ढोला, वंका भड़ ऊठो वदचोला६ ॥३॥
छिन छिन वाट जोवतां छाया, हुई कलल घोड़ा हींसाया।
अणचीत्या वैरी खड़ आया, ऊठो पीव पांमणा आया ॥४॥
चवरा११ वचन सुणे चड़खायो,१२ अँग असलाक१३ मोड़तो आयो।
दूलावत इसड़ो दरसायो, जांणक सूतो सिंघ जगायो ॥५॥
किसै काम आवण रण कालो, बांधे माथै मोड़ विलालो।
भुज डँड पकड़ रूठियो भालो, लेग्रा भचक रूठियो लालो ॥६॥
घटा घोर ज्यंवक घरहरिया, फौजां तणा हवोला१४ फिरिया।
फीलां१५ सिर भंडा फाहरिया, ओलां जिम गोला ओसरिया ॥७॥
अधपत हाथ दिखाया आछा, सत्रवां साव चखाया सांचा।
अजड़ां मार कियो खल आछा, पाचों हला मोड़िया पाछा ॥८॥
प्रथी तणा सुणजो रजपूतो, जुध रे रथ धोरी ह्वै जूतो।
आश्रम चौथो परव अछूतो, सर सेज्या भीसम जिम सूतो ॥९॥
जूनी थह जातां हद जूटो, खूनी सिंह सांकलां खूटो।
छूटो प्राण पछै हठ छूटो, तूटां सीस पछै गढ़ तूटो ॥१०॥

अर्थात् हे आँटीले! उठ, तुझ पर सतारे वालों (मरहठों) ने नगाड़े
[।] दिये हैं, तुझ पर आक्रमण कर दिया है। हे निद्रालु सिंह! हे
[स्वा]मी! जगो, शत्रु-सेना चढ़ आई है ॥१॥

लाखों वातों अर्थात् हर तरह हठ पर चढ़ा हुआ सूवेदार चढ़ाई
के मैदान में आ गया है, वापा का नगाड़ा वजने लगा है, इसलिए
[र]ाठौड़! नींद छोड़ कर खड़े हो जाओ ॥२॥

---

[७] नाम-विशेष ८ राठौड़ ९ स्वाभिमानी १० हाक हुई ११ तीखे १२ उत्तेजित
[हु]आ १३ आलस्य १४ लहरों की टक्कर १५ हाथियों पर।

बहुमूल्य शराब पीने वाले ! शिरस्त्राण और जिरह-बख्तर पहनने वाले तथा सुगन्धित सेज पर आराम करने वाले बांके योद्धा ! उठो । हे प्रियतम ! ध्यान देकर सुनो, लड़ाई के लिए ढालें उठाली गई हैं ॥३॥

हे पति ! क्षण क्षण जिस सुअवसर की प्रतीक्षा की जाती थी, वह आ पहुँचा है । बहादुरों की हाक बढ़ रही है, घोड़े हींस रहे हैं, अचानक वैरी चढ़ आये हैं । हे प्रिय ! उठो, आज ये मेहमान (शत्रु) आ पहुँचे हैं ॥४॥

नीति के वचनों को सुन कर उत्तेजित हुआ दूल्हेसिंह का पुत्र लालसिंह नींद त्याग कर इस प्रकार उठ खड़ा हुआ मानों सोता सिंह आलस्य को छोड़ कर अंग मरोड़ कर जग पड़ा हो ॥५॥ (शरीर को मरोड़ कर आलस्य भगाया जाता है ।)

युद्ध में जाने के लिए बख्तर पहना, सिर पर मेहरा बाँधा और मजबूत हाथों से भाला पकड़ कर वह उठ खड़ा हुआ । युद्ध में भिड़ जाने के लिए वैरियों से रूठा रंगरसिया मौजी लालसिंह आगे बढ़ा ॥६॥

घनघोर बादलों की-सी गड़गड़ाहट से नगारों पर डंके पड़ने लगे, वर्षा के ओलों की तरह तोपों से गोले बरसने लगे, हाथियों पर हौदे कसने लगे और फौजों के हलोरें (पानी की लहरों की फेट) एक के बाद एक आने लगीं ॥७॥

ठाकुर लालसिंह ने जंग में अच्छे हाथ दिखाये, शत्रुओं को अच्छे मजे चखाये, अपनी तलवार से शत्रुओं को ककड़ी की तरह काट कर बराबर किया और इस प्रकार राठौड़ों के दोनों पक्षों को ही उज्ज्वल कर दिया ॥८॥

हे पृथ्वी के रजपूतों ! सुनो, वीर लालसिंह युद्ध करते जग के बीच

होकर जुत गया; वृद्धावस्था में पितामह भीष्म की तरह शर-शय्या पर सो गया, प्राण दे दिए ॥ ९ ॥

पुरानी मांद अर्थात् पुराने गढ़ को शत्रुओं द्वारा नष्ट होते देख कर वह भिड़ गया मानो खूनी सिंह सांकल तुड़ा कर झपटा हो; प्राण छूटने के वाद ही उसका हठ छूटा और उसका मस्तक टूटने के वाद ही वड़ली का पुराना किला टूट सका, पहले नहीं ॥ १० ॥

डिंगल साहित्य के वड़े संग्रहकार और मर्मज्ञ विद्वान् श्री सीतारामजी लालस अपने २१-८-४७ के पत्र में लिखते हैं कि "वरजू वाई कविया करनीदानजी की धर्मपत्नी थीं; कई चारण कवि इन्हें करनीदानजी की वहन और कई करनीदानजी की लड़की भी वतला दिया करते हैं, परन्तु यह सव वातें अनुसंधन की कमी के कारण हैं।

हमारे कुलगुरु, रावों और रावलों की वहियों के अनुसार यह वरजू वाई वि० सं० १८७७ तक जीवित थीं, कुछ निश्चय तो नहीं लिख सकता परन्तु यह करनीदानजी की द्वितीय धर्मपत्नी थीं"

ऊपर जो गीत दिया गया है, उसके संवन्ध में कई लोगों का कहना है कि यह गीत महादानजी महड़ू कृत है किन्तु श्री सीतारामजी लालस के मतानुसार उक्त गीत वरजू वाई का ही वनाया हुआ है। लालसिंहजी की प्रशंसा में कहे हुए दो और गीत उनके संग्रह में हैं जो वरजू वाई द्वारा रचित हैं।*

मेरे मित्र कुंवर सुरजनसिंहजी शेखावत ने (जो डिंगल साहित्य और इतिहास के वहुत अच्छे जानकार हैं) अपने पत्र में इस गीत के संवन्ध में मुझे लिखा है—"अजमेर प्रान्त के वड़ली ठिकाने के ठा० लालसिंहजी के संवन्ध का यह गीत है। जव अजमेर प्रान्त पर सं० १८२८ वि० में महादजी सिंधिया का अधिकार था तो सिंधिया

---

* विरद-शिणगार (पृ० २ तथा पृ० ८-९ पर श्री सीतारामजी लालस का लेख)

के अजमेर के सूबेदार ने अजमेर के सब इस्तमरारदारों पर उनसे खिराज लेने के लिए चढ़ाइयाँ की थीं। उसी सिलसिले में बड़ली पर भी चढ़ाई की गई। ठा० लालसिंहजी अपने ४०-४५ आदमियों के साथ मरहठों से लड़े और मारे गये। यह गीत उसी युद्ध के विषय का है। लालसिंहजी सो रहे हैं। मरहठा सूबेदार ने रात्रि में बड़ली पर आक्रमण कर दिया है। ठकुरानी लालसिंहजी को जगाने के लिए कह रही है।"

उक्त गीत का रचयिता कौन था—यह विषय वस्तुतः विवादास्पद है। बरजू बाई के जीवन से संबन्ध रखने वाली सामग्री के सुलभ होने पर इस विषय पर कभी प्रकाश डाला जा सकेगा।

कुंवर सुरजनसिंहजी के शब्दों में "बड़ली ठा० लालसिंहजी के काफ़ी दोहे मिलते हैं। ठिकाने बड़ली में इनके विषय का एक हस्तलिखित काव्य-ग्रंथ था जो इन दिनों किसी ने चुरा लिया है, अच्छा काव्य-ग्रन्थ बतलाया जाता है।"

जो दोहे कुंवर साहब के सुनने में आये हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं :—

दळ आसी दिखणाद रा, तोपाँ पड़सी ताव।
आ बड़ली भिळसी ज दिन, पड़सी मो सिर घाव ॥ १ ॥
बंका आखर बोलतो, चलतो बंकी चाल।
जुड़ियो बंको खग झटां, लड़ियो बंको लाल ॥ २ ॥
कै भजहूँ करतार, कै मरहूँ खागां खळाँ।
सद बातां दो सार, लाखां हि झूठी बालसी ॥ ३ ॥

सत्ताईस

शेखावाटी के टोडरमलजी ने अनेक वार आमेर की मान-रक्षा की थी। कागज की आमेर का मारा जाना भी वे देख न सके थे और तलवार लेकर जूझ पड़े थे। एक वार नहीं, अनेकों वार उन्होंने आमेर पर चढ़ाई करने वालों को अपनी वीरता से झुकाया था। निम्नलिखित दोहा उनकी प्रशंसा में बहुधा कहा जाता है:—

तू शेखो तू रायमल, तू ही रायासाल।
जयसिंघ का दळ ऊजळा थांसूँ टोडरमाल॥

समस्त शेखावाटी में तथा राजस्थान के दूसरे भागों में भी लड़के का विवाह कर वरात सहित लौट आने के अवसर पर एक गीत ("जीत्या जीत्या टोडरमल जीत्या जी!") गाया जाता है, वह इन्हीं टोडरमलजी की वीरता का जयजयकार है। ❀

अट्ठाईस

वि० स० १६७६ को महाराजा गजसिंह जोधपुर के राजसिंहासन पर बैठे। तत्कालीन बादशाह इनका बड़ा आदर करता था। ये बड़े वीर योद्धा थे। जब ये कुँवर थे तभी इन्होंने जालोर का किला बिहारी पठानों से (जो जालोरी पठान कहलाते थे) जीत लिया था जिसके सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

पिता तपंतै[1] खाटियौ,[2] तैं जालोर निसंक।
ज्यों दसरथ[3] तपतैं गजन, राम न खाटी[4] लंक॥

अर्थात् हे गजसिंह! तूने पिता के जीवन-काल में ही निःशंक

❀ खेतड़ी का इतिहास (पं० झावरमल्लजी शर्मा) पृ० ३०-३१

होकर जालोर के किले पर विजय प्राप्त कर ली थी। वीरता में तू भगवान राम से भी आगे बढ़ गया है क्योंकि भगवान राम ने अपने पिता दशरथ की मौजूदगी में कोई बड़ी लड़ाई नहीं लड़ी थी, लंका पर तो उन्होंने दशरथ की मृत्यु के बाद स्वयं राजा होने पर विजय प्राप्त की थी पर तूने तो कुँवर-पद पर रहते हुए (अपने पिता राजा शूरसिंहजी के जीवन-काल में ही)जालोर फतह करली।

राजा शूरसिंहजी की मृत्यु के बाद कुँवर गजसिंह राजा गजसिंह होकर दक्षिण में महकर के थाने पर मुकर्रर किये गये। वीर होने के कारण महाराज गजसिंह को शत्रुओं से लोहा लेने के लिए शाही सेना के हरावल (अग्रभाग) में रखा जाता था। उस समय अहमदनगर के बादशाह का दीवान अमरचम्पू एक प्रसिद्ध वीर था जिससे शाही सेना की रूह घबराती थी। महाराज गजसिंह के पराक्रम से ही अमरचम्पू को परास्त होना पड़ा था। हर समय शत्रु-सेना को रोकने का इनमें अद्भुत सामर्थ्य था। इसलिये बादशाह ने इनको 'दलथंभन' (सं० दलस्तम्भन=सेना को रोकने वाला) के नाम से पुकारा जो कालान्तर में इनकी उपाधि हो गई।

जब शाहजादा खुर्रम बादशाह जहाँगीर से बागी हो गया तो उसको दबाने के लिये बड़ी भारी शाही सेना शाहजादे परवेज के नेतृत्व में भेजी गई जिसमें राजा गजसिंहजी भी साथ थे। लड़ाई के समय शाहजादा खुर्रम की तरफ से शीशोदिया भीम ने अपने २५ हजार सवारों के साथ शाही सेना पर जबरदस्त आक्रमण किया। शाही सेना के हरोल में उस समय महाबतखां पठान और आमेर के मिर्जा राजा जयसिंहजी थे; राजा गजसिंहजी शाही सेना के वाम पार्श्व

& १ पिता की मौजूदगी में २ जीत लिया, विजय प्राप्त की ३ हे गजसिंह ४ जीत लिया

में खड़े थे। राजा भीम के प्रबल वेग को शाही सेना न सह सकी और उसके पैर उखड़ गये। तब राजा गजसिंह ने अपने राठौड़ सरदारों के साथ भीम पर घोड़े उठा दिये। भीम बड़ी वीरता से खेत रहा। शाहजादा खुर्रम भग गया और इस प्रकार हारी हुई शाही सेना विजयी हो गई। उस समय का कहा हुआ निम्नलिखित दोहा राजस्थान में बहुधा सुना जाता है—

गजबधी[1] आलोचियौ[2], करि भेळा[3] वरियाम[4]।
पतशाही राखूं[5] पगौ, तो दळथंभण नाम॥

अर्थात् गजसिंह ने अपने योद्धाओं को इकट्ठा करके कहा कि यदि मैं बादशाही सेना के पैर न उखड़ने दूं तभी मेरा नाम 'दळथंभण' है अर्थात् मेरी इस उपाधि की सार्थकता तभी है।

उन्तीस

कल्लाजी रायमलोत को जीते जी पकड़ने के लिये अकबर ने सिवाणे सेना भेजी। कल्लाजी बड़ी वीरता से शाही सेना के विरुद्ध लड़ते हुए काम आये। कहते हैं कि इस युद्ध से पहले सिवाणा का किला 'अणकला' (अर्थात् किला नहीं) कहलाता था क्योंकि इससे पहले उस किले के लिये एक भी युद्ध नहीं किया गया था। राव कल्लाजी ने ही सिवाणा के किले को किला कहलाने का गौरव अपने खून को छिड़क कर दिया। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे कहे जाते हैं—

---

१ गजसिंह २ आलोचना की, विचार कर कहा, संबोधित किया ३ इकट्ठा ४ वीरों को ५ खड़ी रखूं, बचालूँ, पैर न उखड़ने दूँ

किलो अणकळो यूं कहै, लड़ कल्ला राठौड़।
मो सिर उतरै महरणों, तो सिर बंधै मोड़।
कळो किला तैं काढ़ियो, लाख दळां थट लेर।
पहर एक लग पाछटी, सीस पड़्याँ समसेर॥

तीस

धर्म-रक्षा

औरङ्गजेब की आज्ञा से दराबखां ने एक बड़ी फौज लेकर खंडेले के मन्दिर को तोड़ने का निश्चय किया। खंडेले के राजा बहादुरसिंहजी मुग़ल सेना से मुकाबला करने में अपने को असमर्थ पाकर पहाड़ों में चले गये। भोजराजजी के वंशधर कुँवर सुजाणसिंह विवाह करने के लिये मारवाड़ गये हुए थे। मारवाड़ से लौटते हुए रास्ते में ही उनको समाचार मिला कि खंडेले का मन्दिर तोड़ा जाने वाला है। उनका राजपूती खून उबल आया और उन्होंने प्राणपण से निश्चय किया कि मेरे जीते जी मन्दिर नहीं टूट सकता। नववधू को तो उन्होंने घर छोड़ा और आप कांकड़ डोरड़े सहित ही अपने कुछ साथियों को लेकर आ डटे। कहते हैं सिर धड़ से अलग होने पर भी यह वीर लड़ता रहा। शरीर के जब तक टुकड़े २ नहीं हो गये उसकी तलवार शत्रुओं के सिर प चलती रही। सुजाणसिंह के सम्बन्ध में निम्न-लिखित दोहा और गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं —

दातां मन्दिर गिर दियो, आनां दळ अवरंग।
इण वातां मुझो अमर, रायमलोनां रंग॥

अर्थात् मन्दिर को गिराने के लिये औरङ्गजेब की सेना के आने पर सुजाणसिंह ने अपने को बलिदान कर दिया जिससे वह पृथ्वी पर

अमर हो गया। रायसल के वंशजों को धन्य है।

नहीं आज जयसिंह जसराज जगतो नहीं,
दे गया पीठ सह छत्रि दूजा।
प्रथी पालट हुवै पाट मिंदर पड़ै,
साद मोहण करै आव सूजा ॥ १ ॥
महवसुत, गजनसुत, करनसुत सुगतगा,
रिधू अन परहरे धरम रेखा।
राख इव सांकड़ी वार तोसूं रहै,
सरम मो 'परम ची विया सेखा ॥ २ ॥
मानहर मालहर अमरहर बीसमें,
अवर रण मँडण न को आया।
असुर दळ ऊपटै आजहूँ एकलो,
जुड़ण कज पधारो स्याम जाया ॥ ३ ॥
साद सुण सेहरो बाँध सिर ऊससै,
परव मन वंछतो जिसो पायो।
वाद सुरताण सूं बाँध खग वाहतो,
असुर दळ गाहतो वेल आयो ॥ ४ ॥
पाड़ पतसाह घड़ सवाड़ा पोढ़ियो,
देव मण्डल सरी न को दूजो।
मार मेछाँण घड़ जोत सूजो मिलै,
पथर पाड़ो भलां कोई पूजो ॥ ५ ॥

अर्थात् आज न मिर्जा राजा जयसिंह है, न जसवन्तसिंह अथवा महाराणा जगतसिंह ही वर्तमान हैं, अन्य क्षत्रिय भी पीठ दिखा कर चले गये। पृथ्वी पर उलट-पुलट हो रहा है (उथल-पुथल मची है), मन्दिरों का सफाया किया जा रहा है। भगवान मोहन पुकार रहे हैं कि हे सुजाणसिंह ! मन्दिर की रक्षार्थ आ उपस्थित हो ॥ १ ॥

महासिंह, गजसिंह और कर्णसिंह के पुत्र हिन्दू-धर्म का निर्वाह करते हुए मोक्ष-पद को प्राप्त हो गये। हे दूसरे शेखा! इस विषम समय में तू ही हिन्दू धर्म की रक्षा कर सकता है, मेरी शर्म तुझी पर है॥ २॥

महाराजा मानसिंह, राव मालदेव और महाराणा अमरसिंह के पोते आज इस संसार से उठ गये हैं—दूसरे क्षत्रिय लोहा लेने के लिये आये नहीं है। मुसलमानों की सेना ने आक्रमण कर दिया है। इसलिये हे श्यामसिंह के पुत्र! आज अकेले भी युद्धार्थ उपस्थित हो॥ ३॥

यह सुनकर उस वीर ने सिर पर सेहरा बाँध लिया और जोश में भर गया। ऐसा जान पड़ा मानो उसे मनोवांछित मृत्यु-पर्व मिल गया हो। बादशाह से वैर बाँधकर, तलवार चलाता हुआ, असुर-दल को नष्ट करता हुआ वह सहायता के लिए आ पहुँचा॥ ४॥

बादशाह की सेना के कितने ही योद्धाओं को उसने मार डाला और उस देवमन्दिर की सीमा पर ही वह चिर निद्रा में सो गया। मुसलमानों के दल को मारकर वह परम ज्योति में मिल गया; अब उसकी ओर से चाहे कोई मन्दिर पूजे या उसके पत्थर उखाड़े॥ ५॥

इकतीस

मान-रक्षा

भूंथगी के कोलराज गौड़ ने अपने नगर के निकट एक तालाब खुदवाना प्रारम्भ किया। गौड़ों ने यह नियम बना लिया था कि जो कोई उस रास्ते से जाय उसे तालाब की मिट्टी खोदकर एक टोकरी

बाहर डाल देनी होगी। संयोग से एक कछवाहा जाति का राजपूत द्विरागमन कर उसी मार्ग से अपनी स्त्री सहित आ रहा था। राजपूत ने नियम का पालन किया--इतना ही नहीं, अपनी स्त्री के हिस्से की भी मिट्टी खोदकर उसने बाहर डाल दी किन्तु जब गौड़ों ने यह दुराग्रह किया कि उसकी स्त्री को भी स्वयं मिट्टी खोदकर बाहर डालनी होगी और जब गौड़ों के पहरेदार ने रथ के निकट जाकर पड़दा उठाया तो राजपूत क्रोध से आगबबूला हो गया और उसने उसी क्षण पहरेदार का सिर उड़ा दिया। इस पर लड़ाई छिड़ गई जिसमें उक्त राजपूत ने अपनी मान-रक्षा के लिये प्राण दे दिये। राजपूतानी एक मुट्ठी धूल लेकर अमरसर में शेखाजी के दरबार में पहुंची और अपना दुखड़ा रो सुनाया। महाराव शेखाजी जिनके नाम से शेखावाटी का इलाका प्रसिद्ध है बड़े शूरवीर थे। उन्होंने आमेर के महाराज चन्द्रसेन से छः लड़ाइयां लड़कर उन पर विजय प्राप्त की थी। राजपूत स्त्री ने शेखाजी की तरफ जब धूल फेंकी तो शेखाजी के एक सामन्त ने कहा कि इस स्त्री का ऐसा करने से तात्पर्य यह है कि या तो झूंथरी के राव कोलराज को उचित दण्ड दिया जाय, अन्यथा सब कछवाहों पर धूल है। राव शेखाजी ३०० अश्वारोहियों और ६० सुतरसवारों को लेकर गौड़ों पर आक्रमण करने के लिये चले। शेखाजी की इस लड़ाई में जीत हुई और झूंथरी पर उनका अधिकार हो गया। कोलराज का सिर काटकर वे अमरसर ले आये और द्वार पर लटका दिया। झूंथरीराव के मृतमुण्ड का अपमान होने से सारी गौड़ जाति में शेखाजी के प्रति द्वेष की अग्नि भड़क उठी। कहते हैं कि इस द्वेष के कारण राव शेखाजी से गौड़ों ने ग्यारह युद्ध किये जिनमें शेखाजी की विजय होती रही किन्तु १२ वें युद्ध में गौड़ों ने जबरदस्त तैयारी की और शेखाजी को युद्धार्थ ललकारा। इस संबंध का यह दोहा प्रसिद्ध है--

गौड़ बुलावै घाटवै, चढ़ आओ सेखा।
थारा लशकर मारणा, देखण अभलेखा॥

अर्थात् हे शेखा! तुम्हें गौड़ घाटवे में बुलाते हैं, देखें आक्रमण करो तो सही। सुनते हैं तुम्हारी सेना मारने वाली है, हमें भी देखने की अभिलाषा है। शेखाजी ने युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई किन्तु स्वयं भी इस संसार से चल बसे। *

बत्तीस

रणोत्सुकता

जिस समय प्रथम यूरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ उस समय जोधपुर के महाराज सुमेरसिंहजी की अवस्था केवल १६ वर्ष की थी किन्तु फिर भी आपने युद्ध में जाने की इच्छा प्रकट की। भारत सरकार ने इतनी छोटी अवस्था में जब आपको युद्ध में भेजना उचित न समझा तो आपने तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंज को एक पत्र में लिखा "It is true, I am only 16, But an Indian of 16 is a man." अर्थात् यह सच है कि मेरी अवस्था केवल १६ वर्ष की है किन्तु भारतवर्ष में १६ का युवा पूर्ण मनुष्य समझा जाता है।

नवयुवक महाराजा की उत्कट इच्छा देख कर वाइसराय ने आपको युद्ध में जाने की इजाजत दे दी। आज्ञा मिलने पर आपको अत्यन्त प्रसन्नता हुई और आपने कहा--"राजपूत के लिए इससे

---

* विशेष विवरण के लिये देखिये 'शेखावाटी प्रकाश' (पं० रामचन्द्र भगवती दत्त शास्त्री कृत)

बढ़ कर खुशी का दिन और क्या होगा जब वह लड़ाई पर चढ़कर जावे।" एक राजस्थानी कवि ने भी कहा है:—

कंकण बन्धन रण चढ़ण पुत्र बधाई चाव।
तीन दिहाड़ा त्याग रा, कूण रंक कुण राव ॥ ❀

अर्थात् विवाह का कंगन बंधना, युद्ध के लिए चढ़ कर जाना और पुत्र का जन्म होना—ये दिन तो राजा और रंक सब के लिए प्रसन्नतापूर्वक त्याग करने के हैं।

तैंतीस

आतंक

औरङ्गजेब जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह से सदा आशंकित रहा करता था। इसलिए उसकी हमेशा यही चेष्टा रहती थी कि वह महाराज को जन्मभूमि से बाहर युद्ध में लगाये रखे। कहते हैं कि एक बार जब जसवन्तसिंह काबुल में थे तो औरङ्गजेब ने हिन्दुस्तान के मन्दिरों को गिराने का निश्चय किया। महाराजा के पास ज्योंही यह खबर पहुँची, वे बोल उठे—यदि बादशाह हिन्दुस्तान के मन्दिरों को गिरवायेगा तो हम यहाँ काबुल की सब मसजिदें गिरवा देंगे। यह देख कर बादशाह चुप लगा गया और उसने अपना इरादा ही बदल

❀ पाठान्तर

रण जीतण कंकण बँधण, पुत्र बधाई चाव।
ये तीन्यू दिन त्याग का, कहा रंक कहा राव॥
धर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पड़ंतां ताव।
ये तीन्यू दिन मरण रा, कहा रंक कहा राव॥

दिया। इस विषय का निम्नलिखित पद्य राजस्थान में प्रसिद्ध है:--

जसवँत जब लग जीवियो, पड़ियो नह पाखाण।

अर्थात् महाराजा जसवन्तसिंह जब तक जीवित रहे, किसी मन्दिर का एक भी पत्थर नहीं गिरने पाया।

चौंतीस

कान्हड़देव का कुमार वीरमदेव जब दिल्ली गया तब वनवीर-पुत्र राणकदेव उसके साथ था। वीरमदेव यह बहाना करके जालौर चला गया कि मैं बरात सजाकर आऊँगा। बादशाह अलाउद्दीन ने राणकदेव को तघलखां की हवेली में नजरबंद रखा था; बाद में उसके पैरों में सोने की बेड़ी डालने का हुक्म दे दिया। तघलखाँ व मघलखाँ उसको सोने की बेड़ी पहनाने के लिए हवेली पहुँचे। यह देख कर आसा नामक चारण से न रहा गया; वह बोल उठा—

रणका सूण जुगेह, राय आँगण रमो नहीं।
(तो)पहिरिस केम पगेह, बड नैवरी वणवीर उत॥

यह सुन कर राणकदेव सचेत हुआ और अपने भींथड़ नामक घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़ने लगा। मुसलमानों ने उसके लिए तुच्छता-सूचक 'रैंकारे'' का प्रयोग किया जिसे सुन कर आसा ने कहा—

तगा तगाई मत करै, बोलै मुँह संभाळ।
नागर नै रजपूत नै, रैंकारै री गाळ॥

इतना सुनते ही राणकदेव ने कटार निकाली और दोनों सरदारों को मार कर घोड़े पर चढ़ कर आगे रवाना हो गया।

'तगा तगा नै मार, रैंगी कटारी राणुवा।'

जब यह रुधिर से भरी कटारी और खून से भरी आँखों से राणकदेव बाजार बीच होकर निकला तो बड़ा भारी कोलाहल मच उठा जिस पर बादशाह कहता है—

कहो क्यूं कौलाहल कटक, सुध पूछे सुलताण।
(कै) मयँगळ थंभ मरोडियौ, कै रीसाणौ राण॥

पैंतीस

साहस

कहते हैं एक बार औरंगजेब ने काबुल की चढ़ाई के बहाने हिन्दुस्तान के राजाओं को काबुल पहुँचा कर जबरदस्ती मुसलमान बनाने का निश्चय किया। सन् १६५२ में बादशाह ने अपनी मुसल-मान और राजपूत सेना सहित काबुल की तरफ कूच किया। अटक में जब सेना का पड़ाव डाला गया, उस समय बीकानेर के राजा करणसिंहजी को किसी तरह औरङ्गजेब की कूट चाल का पता चल गया। उन्होंने अन्य राजपूत राजाओं को भी सतर्क कर दिया। सब ने यह निश्चय किया कि पहले मुसलमान सेना अटक पार हो जाय तो सब राजा लोग यहीं से अपने अपने राज्य को लौट चलें। मुसलमान सेना नदी के उस पार हो गई। इसी समय जयपुर के महाराजा की माता के स्वर्गवास का समाचार आ पहुँचा, इसलिए सब राजा १२ दिन तक शोक मनाने के लिए नदी के किनारे ही ठहरे रहे। इसके बाद यह निश्चय हुआ कि यदि हम यहाँ से अपने अपने राज्य को लौट चलें तो पीछे से प्रबल मुसलमानी सेना आकर हमें नष्ट कर डालेगी किन्तु यदि हम किश्तियों को बेकार कर डालें तो मुसल-मानी सेना नदी के इस पार न आ सकेगी. और हमारा काम बन

जायगा किन्तु प्रश्न यह था कि म्याऊँ का मुँह कौन कपड़े ? इतने में बीकानेर का राजकवि ओजस्वी वाणी में बोल उठा

धरन लगहि सुर धरन लगहि सुर धरन सुरद्धर ।
तज नृप अनठ कठोर रिदय टिकठौर रट्ठवर ॥
कृतवन सुरन सुरट्ट भूप अच्छिय कवि मच्छिय ।
छपौ वंश छत्तीस देव इच्छा इमि इच्छिय ॥
छत लगहि तोहि छत्रिय धरन, धरन सफल जीवन मरन ।
नव कोटि लाज करवर लगे करवर कर लग्गो करन ॥

इस उत्तेजक छप्पय को सुनते ही राजा करणसिंह ने कहा कि सबसे पहले किस्तियाँ तोड़ने के लिए मैं तैयार हूँ। राजाओं ने कहा कि यदि आप ऐसा करने के लिए उद्यत होते हैं तो आज से हम सब आप ही को बादशाह मान कर 'जंगलधरसाह' के नाम संबोधित करेंगे। कहते हैं कि तभी से बीकानेर के राजा की यह पदवी चली आती है। सब राजाओं ने करणसिंहजी को नजरें भेंट कीं और ताजीमें दीं। इसके बाद सब राजा लोग नदी के किनारे गये और सब से पहले करणसिंहजी ने ही किश्ती पर अपना कुल्हाड़ा चलाया। फिर क्या था, राजपूत सैनिकों ने एक एक करके सब किश्तियों को तोड़-ताड़ कर नदी में डुबो दिया। यह देख कर कवि के मुँह से निम्नलिखित छप्पय निकल पड़ा—

तुहि कर घर कर करन काल कर चन्न मवाये ।
तुहि कर घर कर करन खान सुलतान नवाये ॥
तुहि करवर कर करन भूप सब पांय लगाये ।
तुहि कर घर कर करन गयन छक्किन गत पाये ॥
निरनिरि कीति करवर करन, करन कवन नभफल मरन ।
नवकोटि गात कर घर लगे, सो कर घर लागो करन ॥

इस उपाख्यान की ऐतिहासिक सत्यता अत्यन्त विवादास्पद है।

छत्तीस

दानशीलता

महडू शाखा के चारण महकरण ने (जो मोटा होने के कारण ड्डा चारण के नाम से प्रख्यात था) नवाब खानखाना की प्रशंसा निम्नलिखित दोहे कहे थे—

खानाखान नबाबरौ, दीठो ऐहो दैण।
ज्यों ज्यों कर ऊँचा करै, त्यों त्यों नीचा नैण॥१॥
खानाखान नवाब रौ, मोह अचंभो एह ।
केम समाणो मेर मन, साढ़ तिहत्थी देह ॥२॥
खानाखान नवाब रे, खांडै आग खिवंत ।
पाणी वाळा प्रजळै, तृण वाला उबरन्त॥३॥ *

अर्थात् नवाब खानखाना का ऐसा दान देखा कि ज्यों ज्यों ह देने के लिए हाथ ऊँचा करता है त्यों त्यों उसके नेत्र इस लज्जा झुक जाते हैं कि मैंने कुछ भी तो नहीं दिया। अपने बड़े दान को वह नगण्य समझता है ॥१॥

नवाब खानखाना का मन सुमेरु पर्वत के समान विशाल है । झे आश्चर्य इस बात का है कि नवाब का इतना विशाल मन ाढ़े तीन हाथ की देह में कैसे समा सका ? ॥२॥

नवाब खानखाना की तलवार से आग झड़ती है किन्तु बड़े आश्चर्य की बात तो यह है जल वाले मनुष्य तो उससे जल जाते हैं और तृण वाले बच जाते हैं। तात्पर्य यह है कि नवाब के सामने जो

---

* यह दोहा भी सुनने में आता है—

खानाखान नवाब रो, कुण झेलै भुजदण्ड ।
माथा ऊपर रवि तपै, धार तळै ब्रहमण्ड ॥

अपने शौर्य का दर्पण दिखलाते हैं, वे तो तलवार द्वारा मौत के घाट उतार दिये जाते हैं किन्तु तृण मुख में लेकर जो उनकी शरण में आजाते हैं उनकी अनायास प्राण-रक्षा हो जाती है ॥३॥

प्रवाद प्रचलित है कि नवाब खानखाना ने इन दोहों को सुन कर तीन लाख रुपये जड्डा चारण को इनाम में दे दिये थे और उसकी प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा कहा था।

धर जड्डी अंबर जडा, जड्डा चारण जोय ।
जड्डा नाम अलाहदा, और न जड्डा कोय ॥

अर्थात् पृथ्वी और आसमान असीम हैं, इस चारण की कवित्व- शक्ति भी असीम है। इनके अतिरिक्त असीम नाम तो केवल परमात्मा का है, और कोई असीम नहीं।

सैंतीस

बीकानेर के महाराज रायसिंह बड़े उदार और दानी थे। अपने राजकुमार का विवाह करने के लिए जब मेवाड़ में गये तो ५०० घोड़े और ५० हाथी चारणों को दान में दे दिये थे। एक बार प्रसन्न होकर एक कवि को क्रोड़ पसाव देने का निश्चय किया पर कामदार ने जब रुपया देने में आनाकानी की तो तब सवा करोड़ रुपये अपने सामने ही आपने उसे दिलवाये । रायसिंहजी की प्रशंसा में सैकड़ों गीत राजस्थान में प्रसिद्ध हैं। उनमें से निम्नलिखित काव्यात्मक गीत जो उनकी दानशीलता से संबन्ध रखता है नीचे उद्धृत किया जाता है—

[illegible] पाऊँ,
[illegible] ।

मो त्रितलोकि रायसिङ्घ मारइ,

कठइ रहूँ हरि दळिद्र कहइ ॥१॥

वीरोचँद सुत अहिपुर वारइ,

रविसुत तणउ अमरपुरि राज ।

निधि दातार कल्लाउत नरपुरि,

अनँत रोर गति केही आज ॥२॥

रयणद्रियण पाताळि न राखइ,

कनकम्रवण रूधउ कविळास ।

महिपुड़ि गजदातार ज मारइ,

विसन किसइ पुड़ि माँडूँ वास ॥३॥

नाग अमर नर भुवण निरखताँ,

हेक ठउड़ छइ कहइ हरि ।

वर अरि नाना सिङ्घ वातिया,

कुरिँद तठइ जाइ वास करि ॥४॥

अर्थात् पाताल में बलि राजा हैं, इसलिए मैं वहाँ नहीं ठहर सकता; स्वर्ग में ऋद्धि लिये हुए कर्ण रहते हैं, मर्त्यलोक में मुझे रायसिंह मार भगाते हैं, इसलिए दारिद्र्य कहता है कि हे हरि ! मैं कहाँ रहूँ ॥१॥ नागलोक में विरोचन के पुत्र बलि मुझे भगा देते हैं और अमरपुर में सूर्य के पुत्र कर्ण का राज्य है । नरलोक में संपत्ति दान करने वाले कल्याणसिंहजी के पुत्र रायसिंह हैं । हे अनन्तदेव ! इससे अधिक शोचनीय हालत किसकी होगी ? ॥२॥ पृथ्वी का दान देने वाले बलि मुझे पाताल में नहीं रहने देते, स्वर्ण का दान देने वाले कर्ण ने मेरे लिए स्वर्गलोक का द्वार अवरुद्ध कर दिया । इस पृथ्वी पर हाथियों का दान देने वाले रायसिंह मार भगाते हैं । ऐसी परिस्थिति में हे विष्णु ! मैं कहाँ अपना घर बनाऊँ ? ॥३॥ नागलोक,

अमरलोक और नरलोक देखते हुए हरि कहते हैं कि हे दारिद्र्य ! रायसिंह द्वारा पराजित शत्रुओं के घरों में जाकर तुम निवास करो ॥४॥

अड़तीस

अजमेर के चौहान राजा वीसलदे के लिए प्रसिद्ध है कि उसने अपने अतुल द्रव्य का उपयोग नहीं किया, उसने शिला के तले देकर रखा किन्तु इसके विपरीत अजमेर के गौड़वंशीय राजा वछराज ने अरब पसाव तक दिया । कविराज बाँकीदासजी कह गये हैं—

> काळौ वीसलदे कियौ, दरब सिलातळ देर ।
> विमळ कियो वछराज पह, अरब समपि अजमेर ॥

अर्थात् वीसलदे ने द्रव्य को शिला के नीचे देकर उसे कलंकयुक्त किया किन्तु वछराज प्रभु ने अजमेर में अरब पसाव देकर उसे विमल कर दिया । अरब पसाव के संबन्ध में नीचे लिखा दोहा कहा जाता है—

> देतौ अरबपसाव दत, वीर गौड़ वछराज ।
> गढ़ अजमेर सुमेर सूं, ऊँचौ दीसै आज ॥ *

अर्थात गौड़वंशीय वीर वछराज 'अरब पसाव' तक का दान दे दिया करता था । इसलिए अजमेर का किला आज सुमेर पर्वत से भी ऊँचा दिखाई देता है । वीसलदे और आनाजी के द्रव्य के संबन्ध में निम्नलिखित पद्य भी बहुधा सुनने में आता है -

> वीसलदे री दाम रोरि, धर मांहि धराणी ।
> आनै नाम [illegible], सांची सैनाणी ॥

* पाठान्तर— दीधौ अरबपसाव दत, दियौ गौड़ वछराज ।
गढ़ अजमेर सुमेर सूं, ऊंचौ दीसै आज ॥

उन्तालीस

शेखावाटी के किशनसिंहजी बड़े दयावान, उदार सरदार थे। उनकी उदारता की प्रशंसा में कहे हुए पद्य यहाँ दिये जाते हैं—

मेहां मोरां मदझरां, राजा याही रीत।
किसक चढ़ाया करहलां, वलैं न चढ़िया भींत॥

× × × ×

कविया भाग पधारज्यो, कुँवरजु मुरधर देश।
फूलाणी लाखा जिसो, सादाणी किसनेस॥
थारे जोड़ै किसनसी, जग्गो कँवर अमेर।
एकज हूवो करन रे, पदमू बीकानेर॥ ❀

चालीस

देपाळदे अमरकोट का सोढ़ा था। वह जैसलमेर की भूमि में व्याहा था। वह गौने के वास्ते आया। दिन पाँच-सात ससुराल में रहा। फिर रथ लेकर चला। मार्ग में आते हुए एक तालाब आया। सब लोग वहाँ उतरे। दतौन-कुल्ले किये। कलेवा किया। रथ जुतवा दिया। देपालदे स्वयं अमलपानी करके पीछे सवार होकर चला। रथ कोई आध कोस आगे जा रहा है। स्वयं अकेला सवार हुआ पीछे चलता है। इतने में देखता क्या है कि एक चारण हल चला रहा है। हल में एक बैल जुता है। दूसरे बैल की जगह अपनी स्त्री को जोत रखा है। इस प्रकार हल चल रहा है। दिन भी डेढ़ पहर चढ़ आया है। चारणी का माथे का पसीना झर झर पैरों पर उतर रहा है।

देपाळदे ने यह बनाव देखा। देख कर कहा—चारण, क्या

❀ खेतड़ी का इतिहास (पं० झाबरमल्लजी कृत) पृ० ४२-४३।

दूसरा बैल नहीं है ? चारण ने कहा—स्वामी राजा, ऐसा दातार राजपूत तो कोई नजदीक सा है नहीं जिसके पास जाकर माँग लूँ। इसलिए स्त्री को ही जोत रखा है। देखा कि अकाल का उतार हो हो गया है. मेह बरस गया है, जो रेख खींचलूँ (हल से जितना जोतलूँ) वही अच्छी। तब देपाळदे बोला--मेरा रथ आगे जा रहा है। मेरे साथ चल जिससे तुझे बैल दूँ। चारण ने कहा—स्वामी राजा, मैं नहीं आता। बैल; आप तो कहते हैं पर आगे ठकुरानी देने नहीं देगी। राजा ने कहा--तो तेरी स्त्री को भेज जिससे बैल दूँ। चारण ने कहा--जी, स्त्री को नहीं भेजूँगा। हल चलाना बन्द हो जायगा। तब राजा ने कहा--अच्छा, हल मैं चलाऊँगा। तब देपाळदे हल में जुता। कोड़ा चारणी को दिया और कहा—जा बैल एक ले आ। तब चारणी गयी। आगे रथ धीरे धीरे हाँक रहे कि ठाकुर आ पहुँचें। चारणी ने जाकर ताजणा दिया और कहा—जी. ठाकुर ने एक बैल दिलवाया है। तब चाकर ने ठकुरानी से यह बात कही। ठकुरानी चारणी के नजदीक आई। चारणी ने कहा—जी. बैल एक दिलवाया है। तब ठकुरानी बोली—इस बैल के साथ तुम्हारा बैल जुतेगा नहीं। एक बैल से तुम्हारा काम नहीं बनेगा। फिर चाकरों से कहा—चारणी को दोनों बैल देदो और पहुँचा आओ। तब चारणी आशीष देकर चली। बैल ले आयी। ठाकुर हल को छोड़ कर चढ़ा। घोड़े पर चला। चारण ने आशीष दी। ठाकुर ने रथ के पास आकर स्त्री से कहा—तुमने अच्छा काम किया जो दोनों बैल दे दिये। फिर नये बैल मँगवाये। रथ जोत कर घर गये।

चारण के खेत निपजा। रेखा तीन देपाळदे ने खिचवायी थी सो उनमें जुवार के जो पौधे थे उनमें जुवार के से सिट्टे नहीं निकले, मक्के की तरह सिट्टे निकले। तब चारण ने सिट्टों को उखाड़ा। देखता क्या है कि सिट्टों के भीतर दानों की जगह मोती हैं। तब चारण

ने सिट्टे इकट्ठे करके मोती निकाले। तब चारण कहता है—

जौ जाणूँ जिण वार, निज भल मोती नीपजै।
वाहूँ तो वड वार, दीहूँ सूँ देपाळदे॥

अर्थात् यदि उस समय यह जानता कि इस प्रकार मोती निकलेंगे तो हे देपाळदे, बड़ी देर तक, सारे दिन, तुझी से हल चलवाता।" ❀

इकतालीस

एक बार एक बारहठजी भाटी ओडाणी के सुपुत्र जक्खरा के पास गये और उन्होंने उसकी प्रशंसा में कुछ दोहे कहे। अत्यन्त प्रसन्न होकर जक्खरा ने बारहठजी को बहुत कुछ पुरस्कार दिया जिस पर बारहठजी ने यह सोरठा कहा—

खूटी उण खानैह, जिण रो घड़ियो जक्खरो।
बीजी बीजा नैह, मिली न मांटी माढवा॥

अर्थात् विधाता ने जिस खान की मिट्टी से जक्खरा को घड़ा था, उस खान की मिट्टी तो खतम हो चुकी; दूसरे लोगों के लिए उस खान की मिट्टी प्राप्य न हो सकी अर्थात् जक्खरा की बराबरी करने वाला ईश्वर ने दूसरा कोई रचा ही नहीं। इस सोरठे की चर्चा सब जगह हो गई। बीकानेर के राव लूणकरणजी के कनिष्ठ पुत्र करणसिंहजी बड़े गुणग्राही और दातार थे। उन्होंने उक्त बारहठजी को अपने पास बुलाया और जक्खरा से भी अधिक उनकी आवभगत की और उससे भी अधिक दान दिया। फिर पूछा कि बारहठजी! अब क्या कहोगे? उस खान की मिट्टी तो खतम हो चुकी जिसका जक्खरा घड़ा गया था। इस पर बारहठजी उसी समय बोल उठे—

❀ 'राजस्थानी' भाग ३, अंक २

सह बीजो संसार, मांटी हूँ घड़ियो मँडळ ।
तू घड़ियो करतार, काया ही सूं करणसीं ॥

अर्थात् सारा संसार तो मिट्टी का ही बना हुआ है परन्तु हे करणसिंह ! तुझे तो ईश्वर ने अपने शरीर से ही घड़ कर बनाया है। ध्वनि यह है कि जक्खरा अन्य लोगों से श्रेष्ठ था किन्तु करणसिंह में तो ईश्वरोचित गुणों का निवास है, वह तो जक्खरा से भी कहीं अधिक दातार है।

बयालीस

भगवद्भक्ति ★

भीखजन का जन्म तारगवंश में हुआ था । तारग लोगों को उच्च वर्ण के लोग न छूते हैं. न उनसे किसी प्रकार का लेन देन करते हैं। इनका मोहल्ला भी सवर्ण हिन्दुओं के रहने के स्थान से गाँव के एक तरफ ही रहता है। कुओं पर सबके साथ इनको पानी भी नहीं भरने दिया जाता। ये लोग इतने पतित समझे जाते हैं कि प्रातःकाल इनका दर्शन भी अपशकुन माना जाता है। ये खेती-बारी का काम करते हैं और अन्य लोगों से अलग ही रहते हुए अपना जीवन व्यतीत किया करते हैं।

खेती-बारी से जो अवकाश मिलता, भीखजी उसे दादूपंथी साधुओं की संगति में विताया करते थे। भीखजी के समय में फतेहपुर में कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक साधु भी हो गये हैं जिनमें सुन्दरदासजी,

★ भीखजन संबन्धी यह उपाख्यान सौजन्य-मूर्ति श्री देवीदत्तजी धाभाई से प्राप्त हुआ है जिसके लिए लेखक उनका अत्यन्त अनुगृहीत है।

चरनदासजी आदि मुख्य हैं। 'सुन्दर-ग्रन्थावली' के नाम से सुन्दरदासजी के ग्रन्थों का तो प्रकाशन हो चुका है पर कई अन्य साधुओं की रचनाएँ हस्तलिखित रूप में मठों में रहने वाले उनके शिष्यों के पास पाई जाती हैं। साधुओं की संगति से भीखजी भी रचना करने लगे और भगवान के भक्त हो गये। इन्होंने अपना आराध्यदेव श्री लक्ष्मीनाथजी को ही बनाया जिनका मन्दिर शहर के बीच बाजार में स्थित है। इनकी यहाँ बड़ी भक्ति है और प्रायः नगर का प्रत्येक भक्त-नागरिक दर्शन के निमित्त प्रतिदिन इस मन्दिर में आया करता है। भीखजी इनकी भक्ति में इतने तल्लीन हो गये थे कि इनका दर्शन किये बिना न भोजन करते थे और न जल-ग्रहण करते थे। कुछ समय तक तो यह क्रम चलता रहा पर एक बार कुछ लोगों ने कहा कि तारग-कुलोत्पन्न भीखजन का मंदिर-प्रवेश सवर्ण हिन्दुओं के लिए आपत्ति-जनक है। अतः भीखजी को देवालय में जाने से रोक दिया गया। किन्तु वे तो भगवान का दर्शन किये बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करते थे। अपने आप को सर्वथा असहाय पाकर वे मन्दिर के पिछाड़ी रास्ते में बैठ गये और भगवान की भक्ति के बावन कवित्त उन्होंने बनाये जो बाद में 'भीखजी की बावनी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। तीन दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये वे भगवान की स्तुति करते रहे। चौथे दिन सवेरे जब पुजारी भगवान की पूजा के निमित्त भीतर गया तो क्या देखता है कि मूर्ति पीठ फेरे हुए है और भगवान का मुँह पश्चिम की ओर है जिधर भीखजन तीन दिन से भूखे प्यासे बैठे हुए भगवान का भजन कर रहे थे। पुजारी ने मूर्ति को घुमाया पर मूर्ति फिर घूम गई। इस बात की चर्चा सारे शहर में बिजली की तरह फैल गई और सब लोग असली बात जानने के लिए मंदिर में इकट्ठे हो गये। सब लोगों ने भीखजी को परम भक्त समझ कर मूर्ति के ठीक सामने आम रास्ते पर मन्दिर में एक मोरी निकलवादी जिससे यह

भक्त मन्दिर में आये बिना आम रास्ते से भगवान का दर्शन कर सके। जब तक भीखजी जीवित रहे तब तक तो यह मोरी थी। अब करीब पचास वर्षों से उसे बन्द करवा दिया गया है।

सं० १६८३ की पौष शुक्ला पूर्णिमा को 'भीखजन की बावनी' का निर्माण हुआ था जैसा कि निम्नलिखित छप्पय से प्रकट होता है-

संवत सोलह सौ जु बरस तब हुतो तिरासी
पोख मास पख सेत हेत दिन पूरनमासी।
शुभ नक्षत्र जु पुस्य धरयो जु करयो आसारज
कथो भीखजन ज्ञान जाति द्विज कुल आचारज।
सब संतन सों वीनती, अवगुण मोर निवारियहु।
मिलते से मिलता रहो, अनमिल अंक सवारियहु॥

'भीखजन की बावनी' की एक प्रति मेरे पास है जो सन् १६७२ में मुद्रित हुई थी। इसमें ५४ छप्पय हैं किन्तु इसका पाठ बहुत अशुद्ध है। भीखजन के वंश में एक ऐसा आदमी है जो ५२ छप्पयों को कंठाग्र सुना सकता है। अपठित होने के कारण वह शब्दों का शुद्ध उच्चारण तो नहीं कर सकता पर उसके सुनाने और इस पुस्तक के छपे हुए छप्पयों में बड़ा पाठान्तर है। भीखजन के उस वंशज से पूछने पर ज्ञात हुआ कि भीखजन की बनाई हुई सब पुस्तकें कुछ समय पूर्व तो विद्यमान थीं पर कच्चे घरों में आग लग जाने के कारण सब जल गईं। भीखजन की बनाई हुइ पुस्तकों में से 'भीख माला' नाम की एक और प्रसिद्ध पुस्तक है जिसके कुछ दोहे उक्त भीखजन के वंशज को याद हैं।

'भीखजन की बावनी' में से एक अन्य छप्पय उदाहरण के लिए यहां दिया जाता है :—

मंजारी कुल मेद, रक्त केसार परसंगा

नागरवेल खल संग, सहत माखी मल अंगा ।
किस्तूरी मृग नाभ, कीट पाटम्बर सोहै
मणि विषधर उपजंत, फीम जूठनि जग मोहै ।
पारस वंश पखान है, संख हाड सब कोइ कहै
हरिगुन हीत्वै भीखजन, नाहिन कुल कारण चहै ॥

अर्थात् बिल्ली की जेर अशुद्ध होते हुए भी लोग उसके प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, खून के प्रसंग में रहने पर भी केशर शुद्ध समझी जाती है, नागरवेल की उत्पत्ति भी अशुद्ध स्थान से ही होती है और शहद भी मक्खी के शरीर का मैल है। कस्तूरी हरिण के पेट से पैदा होती है और मणि साँप के सिर से उत्पन्न होती है तथा अफीम को भी, जो जूठन है ,लोग प्रसन्नतापूर्वक खाते हैं । पारस पत्थर के वंश का है और शंख भी, सब जानते हैं, हड्डी के अतिरिक्त और क्या है ? उक्त अशुद्ध चीजें भी भगवान के अर्चन-पूजन के निमित्त प्रयोग में आने के कारण शुद्ध समझी जाती हैं । इसलिए भीखजन कहते हैं कि भगवान के गुणों से प्रेम रखने वाले मनुष्य के लिए उच्च कुल की कोई अपेक्षा नहीं रह जाती। कबीर भी इसी स्वर में स्वर मिला रहे हैं:—

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ॥

तेंतालीस

भगवद्भक्ति

कहा जाता है कि उदयपुर (किशनगढ़ राज्य) के बारहठ श्री चतुर्भुजजी बड़े हरिभक्त थे। उनके कोई संतान न थी । एक बार

उनकी स्त्री को किसी ने कह दिया कि बांझ होने के कारण इसका मुंह नहीं देखना चाहिए। जब चतुर्भुजजी को अपनी स्त्री द्वारा यह हाल मालूम हुआ तो निम्नलिखित गीत द्वारा उन्होंने भगवान से प्रार्थना की—

किया रूप नरसिंघ प्रहलाद हित कारणौ,
गयँद उद्धारणौ गरुड़गामी ।
पढावत कीर गणिका थई पारवा,
संतां कज सारवा नमो स्वामी ॥ १ ॥

छान छीपा तणी हाथ निज छवाई,
जिवाई गाय सो जगत जाणै ।
जुलावै कबीरै ध्यान धरियौ ज दिन,
आप वाळद भरे जिनस आणै ॥ २ ॥

जुध करे काज जयमाल अरि गांजिया,
महाबळ भांजिया खेत मांहे ।
रिधू ब्रद छांडि गंगेव पण राखियौ,
आप हरि हाथ आवध उठाहे ॥ ३ ॥

भील सबरी तणा बोर जूठा भखे,
खीचड़ौ जाटणी तणो खायो ।
नरसिया तणा कज सारवा नरायण,
आप हूं सांवळा साह आयो ॥ ४ ॥

बीच लाखा ग्रहे पांडव ऊबारिया,
मारिया कौरवां तणा मार्भी ।
वधारे चीर तैं लाज राखी वळे,
राज दे जुधिष्टिर हुवौ राजी ॥ ५ ॥

दास मीरां जिके जहर राणौ दियौ,
अम्रत कर लियौ जिया पेंच आगौ ।

तिया पिंड रती नहँ ताव लागौ सदन,
भरोसो जगतपत भरम भागौ ॥ ६ ॥

तारियौ अजामिल सजन तैं तारियौ,
गीध ऊधारियौ वेद गावै ।
रहावण विरद गिरवर नखां धारियौ,
पार नहँ सेस माहेस पावै ॥ ७ ॥
उवारे प्रभु पत साप तैं अहल्या,
तवै जग सरव अमरीख तारे ।
सेन रैं हेत नाई हुवौ सांवरा,
सदा भगतां तणा काज सारै ॥ ८ ॥

वारहठ चत्रभुज करैं यूं वीनती,
दीन ले अधारे कान दीजै ।
सरव दुख मेट म्हारो अनै सांवरा,
क्रपा कर आपरैं थको कीजै ॥ ६ ॥

उधारे कीर करलू कुटम आपरौ,
लहै कुण आपरां गुणां लेखौ ।
रमोपत राज रा विरद राखौ रिधू,
दसा मो दीन री ओर देखो ॥ १० ॥

प्रवाद प्रचलित है कि श्री चतुभुजजी की भक्ति से प्रसन्न होकर ागवान ने उनको एक कन्या दी। इस कन्या का विवाह ढोकाळिया (मेवाड़) के ठाकुर कमजी दधिवाड़िया के साथ हुआ जिससे श्यामलदासजी का जन्म हुआ और राजस्थान में कौन ऐसा है जो 'वीर विनोद' के प्रसिद्ध निर्माता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी का नाम नहीं जानता ?

चवालीस

कृष्णगढ़ (राजपूताना) के महाराज साँवतसिंहजी को वृन्दावन के हरिदास नामक वैष्णव ने कहा कि आपको राज्य मिले ऐसा कोई योग नहीं है, इसलिए राज्य का लोभ छोड़ कर आपको भगवान का भजन करना चाहिए। कहते हैं उन्होंने वैष्णव साधु की बात मान ली और वृन्दावन में ही रहने लगे जहाँ राधा के उपासक होने के कारण उन्होंने बदल कर अपना नाम भी नागरीदास रख लिया। जब कभी रूपनगर या कृष्णगढ़ में आजाते थे तो उनकी तबीयत नहीं लगती थी और शीघ्र ही वृन्दावन लौट जाते थे। अन्तिम बार यह कवित्त कह कर गये थे, फिर वृन्दावन से वापिस नहीं आये—

ज्यौं ज्यौं इत देखियत मूरख विमुख लोग,
त्यौं त्यौं ब्रजवासी सुखरासी मन भावैं हैं ।
खारे जल छीलर दुखारे अन्ध कूप चितै,
कालिन्दी के कूल काज मन ललचावैं हैं ।
जेती इहैं बीतत सो कहत न बनत बैन,
नागर न चैन परैं प्राण अकुलावैं हैं ।
थोहर पलास देख देख के बबूल बुरे,
हाय हरे हरे वे कदम्ब सुध आवैं हैं ॥

नागरीदासजी की बनायी हुई पुस्तकें करीब ८० के लगभग हैं। इनकी कविता बड़ी रसीली है जिसे सुन कर चित्त फड़क उठता है। इनका ‘ इश्कचमन ’ काफी प्रसिद्ध हुआ है। नागरीदासजी के फुटकर कवित्तों में से एक कवित्त यहाँ दिया जाता है—

गहियो अकासन को लहियो अथाह थाह,
अति विकराल ज्वाल कलि को मिलायवो ।
ढाल तरवार औं तुपक पर हाथ बान,
गज मृगराज दोनुं हाथन नचायवो ।

गिरतें गिरत पंचज्वाला में जरत पुनि,
कासी में करोत तन हिम में गरायबो ।
बिखम बिख पीवो कछु कठिन न नागर कहै,
कठिन कराल एक नेह को निभायबो ॥

पैंतालीस

उद्‌बोधन

संसार में दो विचित्र उदाहरण मिलते हैं—एक शुक्राचार्य का जिसने अपने पितरों को पढ़ाया था. और दूसरा, गोरखनाथ (वि०सं० १४०७) का जिसने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को शिक्षा देकर मोह-निद्रा से जगाया था प्रवाद प्रचलित है कि गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदरनाथ) जब सिंहल में सिद्धि की पूर्णता के लिए गये तब वहाँ पद्मिनियों के जाल में फँस गये । उनको ढूँढते-ढूँढते उनके शिष्य गोरखनाथ उस स्थान पर जा पहुँचे । गुरु की शोचनीय दशा देख कर उनको बड़ा दुःख हुआ, इसलिए मोह-निद्रा से गुरु का उद्धार करने का उपाय उन्होंने सोचा । योगबल से एक मृदंग के भीतर वे प्रविष्ट हुए । पद्मिनियों ने जब मोहक नृत्य-गीत प्रारम्भ किया तो मृदंग में से नाधिधिन्ना के बजाय एक अपूर्व आवाज निकलने लगी 'जाग मछन्दर गोरख आया, जाग मछन्दर गोरख आया ।' अपने प्रिय शिष्य की आवाज पहचानने पर मत्स्येन्द्रनाथ की आँख खुली । इस प्रकार की अनेक किंवदन्तियाँ गोरख और मछन्दरनाथ के संबन्ध में प्रचलित हैं । गोरखनाथ ने उद्‌बोधन के रूप में अपने गुरु को जो शिक्षा दी थी, उसका मार्मिक वर्णन नीचे के हरजस' में हुआ है—

इसड़ो काम न कीजै गरूजी, आव घटै तन छीजै ओ ।
जै बूँदाँ हूँ लाल नीपजै, वै पर घर क्यों दीजैओ ॥

जाग मछंदर गोरख आयो, पुरब पछिम दियो हेलो ओ ।
कैं निनरां में सोयो प्रेम गरु, आप गरू हम चेलो ओ ॥

इसड़ो० ॥ १ ॥

पर घर लगी पून ज्यूँ आवै, घर लागी कित जावै ओ ।
जळ को डूब्यो तिर कर निकसै, तिय डूब्यो वह ज्यावै ओ ॥
एक बूंन को सकल पसारो, सैंस बूंन क्यों खोवै ओ ।
गई बूँन गरु हाथ न आवै, रही बूंन क्यों बोवै ओ ॥

इसड़ो कार० ॥ २ ॥

राज गये नै राजा झुरवै, बैद गये नै रोगी ओ ।
गये पुरख नै झुरै कामणी, बिंद गये नै जोगी ओ ॥
डिगमिग पाँव पेट भयो पोलो, सिर बुगलै की पँखियाँ ओ ।
मखन मखन गरु वाघनि चर गई, घोर मगन भई अँखियाँ ओ ॥

इसड़ो काज० ॥ ३ ॥

दमड़ी देकर बगड़ी ल्यायो, कांई पूत परणायो ओ ।
ई भरणी को भेद न पायो, जी नै जाळ बिछायो ओ ॥
* कनरफ मूळ काया रो माँडण, अमी अरँड क्यों सींचै ओ ।
पर घर पाँव न धरो गरूजी, आव घटै तन छीजै ओ ॥

इसड़ो० ॥ ४ ॥

अर्थात हे गुरुजी ! ऐसा काम न कीजिये जिससे तेज घटता हो और शरीर क्षीण होता हो । जिस ब्रह्मचर्य से ज्ञान-रत्न उत्पन्न होता है, उस ब्रह्म-तेज को किसी पराई स्त्री के प्रेम में पड़ कर नष्ट क्यों कर रहे हो ? हे मत्स्येन्द्रनाथ ! सावधान हो जाओ गोरख आ गया है

---

* कंद्रप रूप काया का मंडण [illegible],
गोरख कहै सुणौ रे भौंदू, [illegible] ।

(गोरखबानी पृ० ११५)

और उसने पूर्व से पश्चिम तक संपूर्ण भूमण्डल में (गुरु के उद्धारार्थ) चेतावनी दे दी है। हे प्रेमगुरु ! क्या मोह-निद्रा में सोये हुए हो ! (ऐसी गफ़लत की नींद तुम जैसे योगिराज को शोभा नहीं देती।) यद्यपि आप गुरु हैं और मैं शिष्य हूँ फिर भी आपको यह प्रबोध देने की धृष्टता कर रहा हूँ कि ऐसा काम न कीजिये जिससे तेज घटता हो और शरीर क्षीण होता हो। ॥१॥

दूसरे के घर की स्त्री प्रेम-पाश में बँध कर हवा की तरह उच्छृं-खल वेग से प्रेमी के पास यदि आती है तो सोचो उसके घर वाली का क्या ठौर-ठिकाना रहा ! अर्थात् परकीया रूप माया ही यदि मन को अपने मोह-पाश में बाँध लेती है तो शरीर की स्वामिनी जीवात्मा का क्या आश्रय रहा ? जल में डूबा हुआ तो तैर कर बच सकता है किन्तु विषय-रस में डूबा हुआ नष्ट हो जाता है। हे गुरु ! वीर्य की एक बूँद से ही शरीर की रचना होती है और सब ससंज्ञ जीव इसी तरह पैदा होते हैं, तो फिर विषय-भोग में लिप्त होकर हजारों बूँद क्यों नष्ट करते हो ? और हे गुरु ! जो बूँद जा चुकी, वह फिर हाथ नहीं आ सकती, यह सोच कर जो तेज बाकी रह गया है उसे नष्ट न करो। ॥२॥

राज्य चले जाने पर निस्तेज होकर राजा हाथ मलमल कर पछ-ताता है, चतुर वैद्य के हाथ से निकल जाने पर रोगी पछताता है पुरुष के मर जाने पर उसकी स्त्री उसे स्मरण कर करके रोती है और बूँद (तेज) चले जाने पर योगी पछताता और रोता है। यह जवानी थोड़े दिन की है—अंत में बुढ़ापा आयगा जब पैर डगमगायेंगे, पेट ढीला पड़ जायगा और सिर के केश ऐसे सफ़ेद हो जायँगे जैसे बगुले के पंख होते हैं। हे गुरु ! जब वृद्धावस्था रूपी बाघिन * तेज रूपी

---

* व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती। (वैराग्यशतक ३८)

मक्खन को खा जायगी तब ये तेजपूर्ण नेत्र निराशा रूपी घनघोर अंधकार मे निमग्न हो जायँगे। ॥३॥

दमड़ी देकर शूकरी लाये तो कौनसा पुत्र का विवाह कर लिया! हे गुरु! इस माया का रहस्य मालूम नहीं हुआ—इसने जीव को फँसाने के लिये जाल बिछा रखा है। कंदर्प (कामदेव) ही शरीर-रचना का मूल है। एरण्ड जैसे निष्फल शरीर पर तेज रूपी अमृत क्यों बरबाद करते हो? हे गुरु! दूसरे के घर में पैर नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे तेज घटता है और शरीर क्षीण होता है। ॥४॥

छियालीस

स्वामिभक्ति

अलाउद्दीन ने सिवियाणागढ़ (जोधपुर) पर घेरा डाल दिया। दुर्गरक्षक उस समय सांतल सोनगरा था जिसने गढ़ के कोट पर यंत्र चढ़ा-कर युद्ध करना शुरू किया। सात वर्ष तक यह घेरा पड़ा रहा। सांतल के संबन्ध में प्रवाद है कि बादशाह अलाउद्दीन ने उसे प्रलोभन दिया था कि यदि मेरे पक्ष में आ जाय तो गुजरात का प्रदेश तुझे दे दूँ जिस पर सांतल ने कहा था—

तजूं प्राण पण तजूं न मान,
लाजै साम भली चौहान। *

द्रव्य या राज्य के लोभ से जो अपने स्वामी के साथ विश्वास-घात करता था, उसे बड़ा हेय समझा जाता था। कहते हैं कि अलाउद्दीन की शाही सेना ने जब जालौर पर आक्रमण किया था

* आपूं प्राण, न मूकूं माण
लाजइ साम नरां चहुआण (कान्हड़दे प्रबन्ध पृ० ४७)

तब कान्हड़देव के एक सरदार सेजपाल बीका ने शत्रु-सेना को किले के द्वार में प्रवेश करने का गुप्त मार्ग इस शर्त पर बतला दिया था कि जालोर का किला जीत कर उसे दे दिया जायगा किन्तु जब बीका की स्त्री हीरांदे को यह बात मालूम हुई तो उसने अपने पति को बहुत कुछ धिक्कारा और तसली उस पर फेंकी जिससे बीका का देहान्त हो गया। हीरांदे ने किले में शत्रुओं के प्रवेश की खबर राव कान्हड़-देव को उसी समय दी थी ताकि रक्षा का उपाय किया जा सके।

सैंतालीस

कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार "भामाशाह ने जो धन अर्पित किया था, वह इतना था कि कुछ और मिलाने से महाराणा पच्चीस हजार सैनिकों को १२ वर्ष रख सकते थे।" महाराणा भामाशाह की उदारता, स्वामि-भक्ति और देश-प्रेम से बड़े प्रसन्न हुए और रामा के स्थान में भामाशाह को प्रधान के पद पर नियत किया जैसा कि निम्न-लिखित दोहे से प्रकट है—

भामों परधानो करे, रामो कीधो रद्द।
धरची बाहर करण नूं, मिलियो आप मरद्द॥

सुनते हैं, भामाशाह के वंशज आज भी उदयपुर में सम्मान और गौरव की दृष्टि से देखे जाते हैं।

अड़तालीस

आसोप के ठाकुर महेशदासजी कूपावत एक वीर पुरुष थे। महादजी सिंधिया के फ्रांसीसी जनरल डिबोय ने पाटण (तँवरावाटी)

के युद्ध में राजपूतों को हराकर अजमेर और मेड़ते पर चढ़ाई की। मेड़ता के पास जोधपुर की सेना के दो हजार राठौड़ वीरों ने महेशदास के नेतृत्व में घोड़े उठाकर मरहठों की तोपों पर धावा बोल दिया और बड़ी ही बहादुरी से जूझकर सबके सब वीर काम आये जिसका वर्णन डिबोय ने कर्नल जेम्स टॉड को पेरिस की मुलाकात में बड़े ओजस्वी शब्दों में सुनाया था। महेशदास की वीरता का द्योतक काफी काव्य राजस्थानी साहित्य में मिलता है। कुछ दोहे नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

दिखणी आयो सज दळाँ, पृथी भरावण पेश।
कूँपा तो विण कुण करै, म्हारी मदत महेश॥
सुख महलाँ नहँ सोवणो, भार न झल्लै शेश।
तो ऊभाँ दळपत तणां, मुरधर जाय महेश॥

उपर्युक्त दोनों दोहे महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर द्वारा खासा रुक्के में लिखे जाकर महेशदास के पास भेजे गये थे।

अन्य दोहे

दूजां ज्यूं भागो नहीं, दाग न लागो देश।
बागां खागां बांकड़ो, महि बांको माहेश॥
आखाणों अंजस करै, अँजसै मुरधर देश।
दल दिखणी रै ऊपरै, बगियो बींद महेश॥
[illegible]स करै सुर मेड़ता, सांची खाग भरेस।
कुण सिरखो कुण भागसी, देखै जसो कलेस॥
पग गडिया पाताळ सूं, अड़िया भुज असरेस।
नव खड़िया नवखाड़ियां, सुणिया नहिं महेश॥

मेड़ते में इनके मारे जाने पर आलोप का ठिकाना इनके पुत्र रतनसिंह को महाराजा विजयसिंह ने इनायत कर दिया लेकिन कुछ

वर्षों बाद महाराज की नाराजी के चिह्न देख कर रतनसिंह संवत १८५० वि० में बीकानेर चला गया। महाराज ने आसोप का सूना ठिकाना ठाकुर के छुटभाइयों में से जगरामसिंह को दे दिया। जगरामसिंह मेड़ता के रणक्षेत्र से पीठ दिखाकर भग आया था। इसलिए एक चारण ने कहा—

मरज्यो मनी महेस ज्यूं, राड विचै पग रोप।
झगड़ा में भाग्यो जगो, उण पायी आसोप॥

महाराजा विजयसिंह की मृत्यु के बाद महाराजा भीमसिंह ने रतनसिंह को बीकानेर से बुला कर वापिस आसोप का पट्टा उसे बख्श दिया।

उन्चास

जोगीदास के पुत्र भगवानदास ने जोधपुर महाराज अजीतसिंह जी के प्रति बड़ी स्वामि-भक्ति का परिचय दिया था जिसका उल्लेख निम्नलिखित दोहे में स्वयं महाराज द्वारा इस प्रकार हुआ है—

भगवानो जोगा तणौ, सब सांवत सिरताज।
कियो विखो मरुधर मझै, लियां भुजां कुळ लाज॥

अर्थात् जोगीदास के पुत्र भगवानदास ने जो सब वीर सरदारों का सिरताज है, मारवाड़ के शत्रुओं से लोहा लिया और अपने वंश की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखा।

पचास

जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह ने अपने सरदारों से पूछा कि

औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेनाओं से लोहा लेना चाहिये या नहीं ? सरदारों ने उत्तर दिया कि इस संबन्ध में आप जितना और कौन जानता है ? आपका जो आदेश होगा वही हमारे लिए मान्य होगा किन्तु यदि आप परामर्श ही लिया चाहते हैं तो रतन-सिंह राठौड़ से लीजिये। महाराज जसवन्तसिंह ने कहा—

"रिण रामाइण जिसो रचावाँ,
लड़े मराँ चँद नाम लिखावाँ।"

अर्थात् रामायण में जैसे राम-रावण का युद्ध हुआ वैसा ही भयंकर युद्ध हम भी करें और वीरतापूर्वक लड़ते हुए अपने प्राण दे दें जिससे हमारा नाम अमर हो जाय।

यह सुन कर रतनसिंह ने कहा—

जोधां धणी घणा दिन जीवौ,
दळ सिणगार वंस चौ दीवौ।
× × ×
रिण मो रहिआं राज रहेसी,
कमँधाँ कोई न बुरौ कहेसी ।
क्रन मरतैं दुरजोध गयौ क्रमि,
त्रीकम काळजवन आगैं निमि ।

महाराज ! आप सेना के शृंगार और वंश के दीपक हैं; आप चिरकाल तक जीवित रहें। (सेना का समस्त भार मुझे सौंप दीजिये।) युद्ध में मेरे बने रहने से राज्य भी बना रहेगा और राठौड़ों को कोई बुरा भी नहीं कह सकेगा। महाभारत के युद्ध में कर्ण को आगे करके ही दुर्योधन ने अपनी रक्षा की थी और कृष्ण ने भी मौका देख कर युद्ध से पीछे हटने की इसी नीति का आश्रय लिया था।

दूसरे दिन युद्ध की तैयारियाँ हुईं। तीन पहर तक दोनों सेनाओं में घमासान लड़ाई होती रही। चौथे पहर अर्जुन के इस रणक्षेत्र के

जूझार राठौड़ वीर रिणमल ने कहा—हे ठाकुरो ! शतरंज का खेल मँडा है, हमें राजा को बचाना चाहिए। राजा को बचाने से ही बाज़ी जीती जा सकती है। तब घोड़े की बागें पकड़ कर जसवंतसिंह को युद्ध-क्षेत्र से बाहर ले गये।

किश्रौ उजेणी कमधजे, धिन जीवत त्रित धाड़ि,
जुड़ि मुरड़े वळिश्रौ जसौ, रहै रतन मझि राड़ि॥

राठौड़ों के आग्रह के कारण अनिच्छापूर्वक युद्ध से लौटते हुए जसवन्तसिंह ने सारा भार रतनसिंह को सौंप दिया। रतनसिंह शाही नौबत निशान एवं झण्डों को लेकर आगे बढ़ा। राजा महेसदास के इस वीर पुत्र ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई और राठौड़ वीरों ने भी जिस स्वामि-भक्ति का परिचय दिया वह राजस्थान के इतिहास में अनुपम है। कहते हैं कि इस युद्ध में रतनसेन के छत्तीस तीर और तलवार के अस्सी घाव लगे थे। अंत में बुरी तरह घायल होकर व युद्ध-क्षेत्र में गिर पड़ा और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। यह युद्ध संवत् १७१५ (ई० सन् १६५८) में हुआ था।※

इक्यावन

कृतज्ञता

मारवाड़ में रायपुर ठा० राठौड़ अर्जुनसिंहजी बड़े गुणग्राही और उदार थे। बाँकीदास जब उनसे मिलने के लिए रायपुर गये तो ठाकुर साहब ने उनकी बड़ी आवभगत की और बाँकीदास की शिक्षा तथा

※ विशेष विवरण के लिए देखि वेवचनिका रा० रतनसिङ्घजी री महेसदासोत री खड़िया जगा री कही

निवासस्थान आदि का समुचित प्रबन्ध करवा दिया। कवि ने अर्जुनसिंहजी के सम्बन्ध में कहा—

रवि रथ चक्र गणेश रद, नाक अलंकृत नार।
यूंहिज इक इळ पर अजो, दीपै सूर दतार॥

अर्थात् सूर्य के रथ में एक पहिया है, गणेशजी के एक दाँत है, अलंकृत स्त्री के एक नाक है, वैसे ही पृथ्वी पर शूर और दातारों में अर्जुनसिंह एक ही हैं, अद्वितीय हैं।

कालान्तर में बाँकीदासजी ने जब बहुत बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली, तब एक दिन वे महाराज मानसिंहजी के साथ हाथी पर चढ़े हुए जा रहे थे। उस समय रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी उनको रास्ते में मिल गये। अर्जुनसिंहजी ने कविराजाजी से पूछा कि आपको पुराने प्रसंग भी कभी याद आते हैं या नहीं? यह सुन कर बाँकीदासजी ने कहा—

माळी ग्रीपम मांह, पोप सुजळ द्रुम पाळियो।
जिण रो जस किम जाय, अन घण वूठां ही अजा॥

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में माली जल दे देकर वृक्षों का पोषण करता है। वर्षा ऋतु में मूसलाधार वर्षा होने पर भी हे अर्जुनसिंह! उस माली का यश कैसे कम हो सकता है? तात्पर्य यह है कि मैं भी आपके अहसान को किसी प्रकार भूल नहीं सकता।*

रावत

बूँदी के हाडा चौहान बुधसिंह विपत्ति ग्रस्त होकर अपनी रानी ने रावत के घर बेगूं चले आये। बेगूं के रावत देवीसिंह ने इनकी

* बाँकीदास ग्रन्थावली तीसरा भाग पृ० ४८

वड़ी खातिरदारी की और वड़े सम्मान से अपने पास रखा; अपनी जागीर ही इनके सुपुर्द करदी। इस अहसान का बुधसिंह पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने रावत देवीसिंह को कहा—

धर पलटी पलट्यो धरम, पलट्यो गोत निसंक।
दवो हरीचंद राखियो, अधपतियाँ सिर अंक॥

अर्थात् जमीन गई, ईमान गया, गोत्री भाई भी निःशंक बदल गये! ऐसे समय हरिसिंह के पुत्र देवीसिंह ने राजा बुधसिंह के ऊपर बहुत बड़ा अहसान किया। इसके उत्तर में रावत देवीसिंह ने कहा—

देवा दरियावाँ तणो, होड न नाड़ो होय।
जो नाड़ो पाजां छळै, तो दरियाव न होय॥

अर्थात् दरियाव राजा बुधसिंह की बराबरी देवा जैसा नाला नहीं कर सकता। नाले का पानी अपनी सीमा का अतिक्रमण करके भी बहने लग जाय तब भी वह दरियाव नहीं बन सकता।

उक्त दोहों में कृतज्ञता और मान-मर्यादा का भाव द्रष्टव्य है।

महाराव बुधसिंह बारह वर्षों तक वेगूं में रहे और वि० सं० १७९६ में वेगूं के पास बाघपुरे गाँव में इनका देहान्त हुआ।

तिरेपन

श्री कृपारामजी बारहठ चारण जाति के एक देदीप्यमान रत्न थे। सीकर के अन्तर्गत ढाणी नामक एक ग्राम में उनका जन्म हुआ था। कहते हैं कि वि० सं० १८५२ में जब एक बार बारहठजी बहुत बीमार हुए तो राजिया नामक उनके एक स्वामिभक्त सेवक ने उनकी सच्चे मन से सेवा की। बारहठजी इससे बहुत ही प्रसन्न हुए और कहा कि इस सेवा के बदले मैं तुझे अमर कर दूँगा। बारहठजी ने राजिया को

संबोधित करते हुए सैकड़ों सोरठे बनाये जो बहुत ही लोकप्रिय हुए। उनमें से उदाहरण के लिए कुछ सोरठे यहाँ दिये जाते हैं :—

कीधोड़ा उपकार, नर कृतघण जाणै नहीं।
लानत त्यारीं लार, रजी उड़ावो राजिया ॥१॥

हुन्नर करो हजार, स्याणंप चतराई सहत।
हेत कपट व्यवहार, रहै न छाना राजिया ॥२॥

निश्चय होय निसङ्क, चित ना कीज्यो चळ विचळ।
ये विधना रा अंक, राई घटै न राजिया ॥३॥

डूंगर बळती लाय, दीखै सारा जगत नै।
प्राजळती निज पाय, रती न सूझै राजिया ॥४॥

अर्थात् कृतघ्न पुरुष किये हुए उपकार को नहीं मानते। ऐसे धिक्कारने योग्य मनुष्यों के पीछे हे राजिया! धूल उड़ानी चाहिए ॥१॥

कितनी ही कला-चातुरी और बुद्धिमानी करो, प्रेम और कपट का व्यवहार छिपाये नहीं छिपता ॥२॥

निश्चय ही निःशंक होकर चित्त को विचलित नहीं करना चाहिए क्योंकि हे राजिया! विधाता के लेख राई भर भी नहीं घटते ॥३॥

पर्वत पर जलती हुई आग तो सारे संसार को दिखलाई पड़ती है, पर हे राजिया! अपने पैरों के पास जलती हुई आग जरा भी दिखलाई नहीं पड़ती अर्थात् सभी दूसरों के अवगुण देखते हैं, अपने अवगुणों को कोई नहीं देखता ॥४॥

बारहठजी ने इन सोरठों द्वारा राजिया को अमर कर दिया। ये सोरठे राजिया के सोरठे ही कहलाते हैं; साधारण मनुष्य तो बारहठजी का नाम भी नहीं जानते।

चौवन

कृतघ्नता

मूता नैणसी की ख्यात राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। नैणसी का जन्म सं० १६६० में हुआ था। सं० १७१४ में जोधपुर महाराज जसवंतसिंह (प्रथम) ने इसे अपना दीवान बना लिया था। एक बार किसी कारण से महाराज नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास पर नाराज हो गये और दोनों को कैद कर लिया। फिर सं० १७२५ में उन पर एक लाख रुपये का जुर्माना कर उन्हें छोड़ दिया गया। परन्तु नैणसी ने एक पैसा तक देना मंजूर नहीं किया जिस पर सं० १७२६ में दोनों भाइयों को फिर क़ैद कर लिया गया। राजस्थान में इस विषय के निम्नलिखित पद्य अब तक प्रसिद्ध हैं—

लाख लखारां नीपजै, वड़ पीपळ री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक॥
लेसो पीपळ लाख, लाख लखारां लाभसी।
तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी॥

अर्थात् एक लाख रुपये जुर्माने की बात सुन कर नैणसी ने कहा था कि लाख तो लखारों के यहाँ मिलेगी जो वड़-पीपल से पैदा होती है। मैं तो तांबे का एक पैसा भी न दूंगा।

जेल में जब इन दोनों भाइयों को बड़े कष्ट दिये जाने लगे तो कटारी खाकर इन दोनों भाइयों ने सं० १७२७ में आत्महत्या कर ली।

पचपन

जिस समय जोधपुर में महाराजा मानसिंहजी राज्य करते थे, उस समय चाँपावत सरदार करणसिंहजी उनके पूर्ण कृपापात्र थे

करणसिंहजी हरसोलाव के ठाकुर के छोटे भाई थे और सागदड़े की लड़ाई में इन्होंने मानसिंहजी की प्राण-रक्षा की थी। विपत्ति के दिनों में मानसिंहजी एक बार सागदड़े ठहरे हुए थे। मौक़ा पाकर जोधपुर-नरेश भींमसिंहजी की सेना के सिंघी चैनकरण और चांदावत बहादुरसिंह ने मानसिंहजी पर हमला कर दिया। उस समय चाँपावत करणसिंहजी ने बड़ी स्वामिभक्ति का परिचय दिया। उन्होंने महाराजा मानसिंहजी को तो किसी सुरक्षित स्थान पर भिजवा दिया और स्वयं शत्रुओं को रोक कर लड़ने लगे। इस प्रकार मानसिंहजी के प्राण बचे। जोधपुर के राजा होने पर मानसिंहजी ने करणसिंहजी को सालावास की जागीर प्रदान की थी परन्तु धौंकलसिंह के बखेड़े के समय जब सब सरदार मानसिंहजी के विरुद्ध हो गये थे तब करणसिंहजी को भी सब सरदारों से मिला हुआ मान कर महाराजा मान ने उन की सालावास की जागीर जब्त कर ली थी और उन्हें नजरकैद कर दिया था। संयोगवश जोधपुर महाराज उसी मकान के पास से सवारी लगा कर जा रहे थे जिसकी छत पर खड़े हुए करणसिंहजी मनोविनोदार्थ पतंग उड़ा रहे थे। मानसिंहजी स्वयं कवि थे। उन्होंने करणसिंहजी को पतंग उड़ाते देखकर निम्नलिखित सोरठे कहे—

* पिंड री गई प्रतीत, गाड जमी दोनों गया।
चांपा हमैं नचीत, कनख उडावो करणसी ॥

बदबद वाल्हा बास, भायां सूं करतो भळै।
सुपनै हिं सालावास, करसो राजस करणसी ॥

---

* मारवाड़ में बोलचाल में 'पिंडां' खुद के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे 'हूं पिंडां गयो' अर्थात् मैं खुद गया। अंग्रेजी के Personally शब्द से यह मिलता है। मारवाड़ के सरदारों को भी 'पिंडां' कह कर सम्बोधित करते हैं जैसे 'पिंडां कठे विराजे हैं?' अर्थात् सरदार कहाँ विराजते हैं?

अर्थात् शरीर का विश्वास गया, गर्व और जमीन दोनों गये। अब तो हे चाँपावत करणसिंह ! निश्चिन्त होकर पतंग उड़ाते रहो। पहले जब कृपापात्र बने हुए थे, सुन्दर महलों में रहते थे और अपने कुटुम्ब वालों को भी इकट्ठा कर लिया था। अब सालावास में तो हे करणसिंह ! स्वप्न में ही राज्य करोगे।

इन सोरठों के उत्तर में करणसिंहजी ने महाराज मानसिंहजी को निम्नलिखित करारा उत्तर दिया था—

पिंड री हुती प्रतीत, सो तो सागदड़ै जाणीं सही।
इण घर याही रीत, दुरगो हि सफरा दागियो॥

अर्थात् इस शरीर का जो विश्वास था उसका पता तो सागदड़े के मुकाम पर अच्छी तरह लग गया। आपके घराने में कृतज्ञता तो है ही नहीं, यहाँ तो दुर्गादास जैसा देश-भक्त भी मारवाड़ से निकाल दिया गया था जिससे उसका दाह भी चिप्रा नदी पर हुआ, मारवाड़ में नहीं। सच्ची स्वामिभक्ति वीरता तथा राज्य की उत्तम सेवा के कारण दुर्गादास की प्रतिष्ठा राठौड़ सरदारों तथा अन्य राजाओं आदि में बहुत कुछ बढ़ी हुई थी जिसको सहन न कर महाराज अजीतसिंह ने बुरे लोगों के बहकाने में आकर अपने और अपने राज्य के रक्षक दुर्गादास को मारवाड़ से निकाल दिया था जिससे महाराज की बड़ी बदनामी हुई थी। मारवाड़ छोड़ने पर दुर्गादास महाराणा की सेवा में रहे जहाँ उनकी बड़ी आवभगत हुई। महाराणा ने बाद में उनको रामपुरा भेज दिया था। वहीं उनका देहान्त हुआ जिससे उनकी दाहक्रिया चिप्रा नदी के तट पर हुई।

छप्पन

भर्त्सना

जोधपुर के महाराज अजीतसिंहजी ने अपने राजकुमार अभयसिंहजी को किसी आवश्यक कार्यवश मुहम्मदशाह के पास दिल्ली भेजा। साथ में रघुनाथ भंडारी भी था जो विश्वासपात्र समझ कर भेजा गया था। बादशाह ने राजकुमार का बड़ा आदर सत्कार किया और रघुनाथ भंडारी को भी अपनी तरफ मिला लिया। फिर आमेर के महाराजा जयसिंह के सहयोग से इस बात का प्रयत्न किया कि अभयसिंहजी अपने पिता को मरवा डालने का प्रयत्न करें। कहते हैं कि एक बार बादशाह नौका में बैठ कर यमुना की सैर कर रहा था। अभयसिंहजी को भी साथ में ले लिया था। जब नौका धारा के बीच पहुँची तब बादशाह ने अभयसिंहजी को बाध्य किया कि या तो तुम अपने पिता की हत्या करवाओ, नहीं तो यमुना में डुबो दिये जाओगे। ऐसी परिस्थिति में अभयसिंहजी ने अपने छोटे भाई बखतसिंहजी को पत्र लिखा कि वह पिता की हत्या कर डाले। बखतसिंह ने बड़े भाई की इच्छानुसार यह निन्दनीय कर्म कर डाला। वि० सं० १७८१ में रनवास में सोते हुए अपने पिता का काम तमाम कर डाला। इस विषय का निम्नलिखित दोहा राजस्थान में प्रसिद्ध है—

> *बखता बखतां बाहिरा, क्यूं मारयो अजमाल।*
> *हिंदवाणी रो सेहरो, तुरकाणी रो साल॥*

अर्थात् समय के विपरीत काम करने वाले हे बखतसिंह! तुमने अजीतसिंह को क्यों मार डाला? वह हिन्दुओं का सिरमौर और मुसलमानों का शत्रु था।

सत्तावन

वीकानेर के राजा दलपतसिंहजी को एक वार वादशाह ने कैद कर लिया किन्तु वीकानेर के सरदारों ने उनको छुड़ाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। एक चारण से यह नहीं देखा गया। उसने निम्नलिखित दोहे द्वारा धिक्कार वतलाई—

फिट वीदां, फिट कांधळाँ, जंगळधर लेडांह।
दळपत हुड ज्यूं पकड़ियो, भाज गई भेडांह ॥

अट्ठावन

हास्य

जनरल सर प्रतापसिंह ब्रिटिश साम्राज्य के महान् स्तम्भ थे। आप पोलो के नामी खिलाड़ी और उच्चकोटि के शिकारी थे। पाश्चात्य वेश-भूपा से प्रभावित होकर आपने दाढ़ी-मूँछ मुंडा डाली थी और साफे की जगह टोप धारण कर लिया था। उन्हीं के कृपापात्र ऊमरदानजी लालस ने इस परिवर्तन को देख कर निम्नलिखित दोहा कहा था—

डाढ़ी मूंछ मुंडाय कै, सिर पर धरियौ टोप।
परतापसी तखतेस रा, थारै वाकी चटै लँगोट ॥

अर्थात् हे तखतसिंह के पुत्र! दाढ़ी-मूँछ मुंडा कर आपने सिर पर टोप धारण कर लिया, अव केवल लँगोट वाकी रह गया है—फिर दण्डी स्वामी वनने में कोई कसर नहीं!

उनसठ

व्यंग्य

मेवाड़ के स्वर्गीय महाराणा सज्जनसिंहजी को जब ब्रिटिश सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई० की उपाधि मिली तो बड़ा भारी उत्सव मनाया गया था। किन्तु एक चारण कवि उदास हुए बैठे थे। लोगों ने कहा—कविराज, कोई अच्छी-सी कविता सुनाओ। आज तो बड़ी खुशी का दिन है, उदासी कैसी ? कविराजा ने यह सुनते ही निम्नलिखित दोहा कहा—

आगै आगै बाजता, हिन्द-हद्द रा सूर।
अब देखो मेवाड़पत, तारा हुया हजूर॥

अर्थात् पहले तो मेवाड़ के महाराणा 'हिन्दुआ सूरज' कहलाते थे, अब वे हिन्द के सितारे मात्र रह गये हैं !

साठ

मनोविनोद

राठ्धड़े की राजकुमारी का विवाह सिरोही के महाराव सुरताण के साथ हुआ था। आबू पहाड़ की रमणीय शोभा देखकर एक दिन महाराव ने अपनी रानी के सामने निम्नलिखित दोहा कहा—

टूंके टूंके केतकी, झरने झरने जाय।
अर्बुद की छवि देखतां और न आवै दाय॥

अर्थात् पहाड़ के शिखर शिखर पर तो केतकी फूली हुई है और झरने झरने पर जाय (चमेली) है। आबू की प्राकृतिक सुषमा को देखते हुए और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती।

पति से सहमत न होकर रानी ने उत्तर दिया—

जव खाणो भखणो जहर, पाळो चलणो पंथ ।
आवू ऊपर बैसणो, भलो सरायो कंथ ॥

अर्थात् जहाँ जौ खाने पड़ते हैं, अफीम का सेवन होता है और पैदल चलना पड़ता है, हे कंत ! उस आवू पर वैठने की आपने भली प्रशंसा की ! रहने लायक स्थान तो राड़धड़ा ही है जहाँ का निवास देवताओं को भी दुर्लभ है। राड़धड़े की प्रशंसा में रानी ने निम्न-लिखित दोहा कह सुनाया—

धर ढांगी आलम धणी, परवल लूणी पास ।
लिखियो जिणने लाभसी, राड़धड़ा रो वास ॥

अर्थात् जहाँ ढाँगी नामक रेत के टीले की जमीन है, आलमजी नामक इष्टदेव रक्षक हैं और प्रवल लूणी नदी पास ही वहती है, ऐसे राड़धड़े का निवास तो जिसके भाग्य में लिखा है उसी को मिलेगा।

इकसठ

बुझौवल

नादावत भीमसिंह के पास किसी ने निम्नलिखित दोहा लिख कर भेजा—

माथा टामक जेहड़ा, कान रतीक रतीह ।
दे नादावत भीमड़ा, जंगळ तणा जतीह ॥

अर्थात् जिसका मस्तक नगाड़े जैसा हो, कान रत्ती की तरह छोटे-छोटे हों और जो जंगल का यती (संन्यासी) हो, वह हमें दीजिये। माँगने वाले का आशय ऊंट से था किन्तु जिसके पास यह दोहा

भेजा गया उसने समझा कि सिंह माँगा जा रहा है। जब माँगने वाला उक्त दोहे का आशय भली भाँति व्यक्त न कर सका तो उसने अपने आशय के स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित दोहा लिख भेजा—

माथा टामक जेहड़ा, बाहू डंड प्रचण्ड ।
दे नादावत भीमड़ा, धर करवत घर मंड ॥

अर्थात् हे नादावत भीम! हमें वह प्राणी भिजवाइये जिसका मस्तक नगाड़े जैसा हो, प्रचण्ड जिसके बाहु हों, जो पृथ्वी का करौत और घर की शोभा हो। इस बार अर्थ के समझने में किसी प्रकार का भ्रम न रहा।

बासठ

काव्य-चर्चा

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी की साहित्य-शास्त्र में अच्छी गति थी। आप स्वयं कविता बनाते थे और कविताओं का अर्थ भी अच्छा लगाते थे। श्रीनरहरिदासजी के अवतारचरित्र में एक अर्द्धाली आती है—

"सहज राग अधरनि अरुनाए।
मानहुँ पान पानसे खाये ॥" *

जोधपुर के महाराज मानसिंहजी ने इन पंक्तियों का अर्थ किया था कि "प्राकृत रंग ने होठों को ऐसा लाल कर दिया है कि मानो पान जैसे पतले होठों ने पान खाया है।" महाराणा ने जब यह सुना तो

* देखिये अवतारचरित्र पृ० ४० (श्रीधरशिवलालजी ज्ञानसागर छापाखाना, बम्बई)

फरमाया कि कवि का आशय होठों की प्रशंसा करने का नहीं है, वह तो होठों की लाली का वर्णन करता है। फिर उपमा की योजना होठों से करके पान से होंठ का अर्थ लेना कवि के अभिप्राय के विरुद्ध है। इसका सीधा सादा अर्थ यही क्यों नहीं कर दिया जाय कि स्वाभाविक रंग से होंठ ऐसे लाल थे कि मानो पाँच सौ पान खाये थे। सरल और सरस होने से सबने इस अर्थ को पसन्द किया। †

तिरेसठ

काव्य–चर्चा

कहते हैं कि 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' नामक काव्य-ग्रन्थ को सुन कर कुछ चारणों के मन में संदेह पैदा हुआ कि ऐसा उत्कृष्ट ग्रन्थ चारणों के अतिरिक्त और कोई नहीं लिख सकता, इसलिए 'वेलि' महाराज पृथ्वीराज की रचना नहीं हो सकती। इस पर पृथ्वीराज ने प्रसिद्ध चारण-कवि माधोदास दधवाड़िया, केशव गाडण, माला साँदू और दुरसा आढा को बुला कर ग्रन्थ सुनाया। ग्रन्थ सुन कर माधोदास और केशवदास ने तो कहा कि राजा परम भगवद्भक्त है, इसलिए ऐसे सुन्दर ग्रन्थ की रचना करना उसके लिए अशक्य नहीं है किन्तु माला और दुरसा का संदेह वैसे ही बना रहा। महाराज पृथ्वीराज के पास जब यह खबर पहुँची तो उन्होंने माधोदास, केशवदास तथा मालाजी और दुरसाजी के लिए निम्नलिखित उपयुक्त दोहे कहे :—

चूंडे चत्रभुज सेवियो, ततफळ लागो नास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ॥

---

† राजरसनामृत पृ० २३

केशो गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार ।
सिधरूपी रहता सबद, गाडण गुण भंडार ॥
वाई वारे खालियाँ, काई कही न जाय ।
ऊदे मालो ऊपनों, मेहे दुरसा थाय ॥

किन्तु दुरसा आढ़ा के निम्नलिखित पद्य में 'वेलि' को 'पाँचवाँ वेद' और '१६ वाँ पुराण' कह कर उसकी प्रशंसा की गई है जिससे उक्त प्रवाद की सत्यता में सन्देह होता है :—

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण ।
'वेलि' तासु कुण करै वखाण ॥
पाँचमौ वेद भाखियौ पीथळ ।
पुणियौ उगणीसवों पुराण ॥

चौंसठ

काव्य-चर्चा

'सूरजप्रकाश' करणीदानजी का प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ है जो अभी तक अप्रकाशित है। उसका कुछ अंश बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा छपा था। इसी वृहद् काव्य का सारांश कवि ने 'विरद-शिणगार' के नाम से लिखा था जो छप चुका है। प्रवाद प्रचलित है कि एक बार करणीदानजी जब विरद शिणगार की रचना कर रहे थे, उस समय उन्होंने पद्धरी छन्द का यह पद कहा—

लोहगं लंगरं भाट लाग

अर्थात लोहे के लंगरों के भटकारे लगते हैं। (अभयसिंहजी जब सर बलंदखां को जीतने के लिए सेना सहित प्रयाण करने लगे,

उस समय का वर्णन है)। जब करणीदानजी बार बार इस पद की आवृत्ति कर रहे थे, बरजू बाई ने कहा— आज यह क्या पाठ हो रहा है ? उन्होंने कहा कि इस पद की पूर्ति के लिए दूसरा पद सोच रहा हूँ। बरजू बाई ने तुरन्त उत्तर दिया— अरे, इसमें इतने विचार की क्या आवश्यकता है, इस तरह पूर्ति कर दो—

"लोहरां लंगरां झाट लाग
अधफरां गिरवरां झड़ै आग॥"

अर्थात् लोहे के लंगरों के झटकारे लगने से पहाड़ों के अधफरों में अग्नि झड़ती है।

पैंसठ

वंशभास्कर में स्त्री कवियों के नामों का उल्लेख करते हुए कहा गया है:—

"अजिता बाणी अंस, सुन्दरिका करनी सिरा।
बरजू चारण वंस, काव्य करी इत्यादि तिय॥"

ऊपर के सोरठे में अजिता, सुन्दरी बाई, करनी तथा सिरै कुंवरी के साथ बरजू बाई के नाम का उल्लेख हुआ है। बरजू बाई सूरज-प्रकाश के प्रसिद्ध रचयिता श्री करणीदानजी की बहिन थीं जो अच्छी कविता किया करती थीं। कहा जाता है कि करणीदानजी विद्या का लंगर बाँधे रहते थे। एक बार बरजू बाई ने अपने भाई से कहा— तुम्हें विद्या का बड़ा गर्व है, मेरे बनाये हुए छप्पयों का यदि अर्थ कर सको तब तो लंगर रखो, अन्यथा इसे खोल डालो। बरजू बाई के बनाये हुए छप्पयों का जब करणीदानजी अर्थ न कर सके तो उन्होंने लंगर खोल डाला। पाठकों के मनोरंजनार्थ बरजू बाई के उन अनेक छप्पयों में से दो छप्पय यहां दिये जाते हैं।

भ्रमर अमैं ऊजळो, चंद मैं काळो दट्ठो ।
पाणी मरै पियास, पवन तप करण पयट्ठो ।
अन ज भूख दूबळो, सीत कापड़पै कम्पै ।
त्रिया रोवंती देखि, थान ले बाळक अंपै ॥
लूण अलूणो इम कहै, घ्रत ल्हूको पाहण सरस ।
नर निनाद साँभळ नरा, जोग श्रृंगारक वीर रस ॥ १ ॥

कहा सलिल द्वै ताल, परम सद्नन विचारै ।
कहा रेन को बाल, करग दत पछियन धारै ॥
कहा रूप की नाव, सदा श्रेष्ठक उर दाहक ।
कहा पातर घर पीर, तेज बिनु सवै अभायक ॥
निस दिवस पुळै नह एक पळ, तु रज चरन किंकर कहा ।
द्वै पंख अपढ़ रा सुर निगुन, कहिये ये अवगुन महा ॥ २ ॥

श्रीयुत सीतारामजी लालस उक्त छप्पयों को वरजूबाई कृत नहीं मानते । उनके मतानुसार ये छप्पय अलूजी के बनाये हुए हैं किन्तु कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये छप्पय "अल्लूजी के नहीं मालूम होते क्योंकि अल्लूजी कृत छप्पयों में प्रत्येक छप्पय की अन्तिम लाइन में अल्लूजी की छाप मिलती है । इन छप्पयों में ऐसा नहीं है । इसके अलावा इन दोनों छप्पयों की शब्द-रचना भी अल्लूजी कृत छप्पयों से मेल नहीं खाती है । अल्लूजी कृत छप्पयों की कुछ अन्तिम पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

शारी सोलह कला अमृत श्रवै सूरज जोत समत्थ रै ।
अवगत्त नाथ ऊपर अलू, कमळा आरति करै ॥
ईशान कोण आनन्द उर, भव कीरत सिद्ध भेव लख ।
अठ पंख कमळ ऊपर अलू, आप भाय खेलै अलख ॥ २ ॥
हंसणी गई प्यासी अलू, राम नीर चखिया नहीं ॥ ३ ॥
अचंभो हेक दीठो अलू, छद मांही वेहद हुवै ॥ ४ ॥"

यह सब विद्वानों की गवेषणा का विषय है। आशा है राजस्थानी के कोई विद्वान इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे।

छियासठ

एक बार कोटड़ी के कविराजा साहब ने चारणों से कहा कि गीत तो डिंगल भाषा में ही बन सकता है, दूसरी भाषा में नहीं। इस पर चण्डीदानजी ने कहा कि यह कोई बात नहीं है, रचना करने वाला हो तो दूसरी भाषा में भी गीत बन सकता है। श्री चंडीदानजी ने निम्नलिखित गीत ब्रजभाषा में बना कर प्रस्तुत किया।

सरद अरद गलती निशा चंद दरसावती,
आवती रमण ढिग अधिक ओपी।
भले रस कुसम सर मथी मन भावती,
गावती हरी गुण चली गोपी ॥ १ ॥

उठी ब्रजराज रस वयण रिव इ'चियो,
सोम रथ खींचियो कलप संधी।
हाव भावादि जोसा करण हींचियो,
वहुल रस सींचियो नेह वंधी ॥ २ ॥

एक इक कान्ह तिम गोपका एक इक,
एक इक ध्यान इक ध्यान अरसी।
एक इक मान इक ध्यान नरखे अमर,
देह इक मान इक मान दरसी ॥ ३ ॥

घंटका घूंघरू ,वोप 'वमघमे छे,
वमेछे संसफण नाग वाधा।
निलप अलपाव लिलता ब्रज .नमेछे,
रास रँग रमेछे कान राधा ॥ ४ ॥

सड़सठ

नामकरण

मौर्य वंश के राजा चित्रांगद ने चितौड़ का किला बनवाया था। इसी से इसको चित्रकूट (चित्तौड़) कहते हैं। बापा रावल ने मौर्यवंश के अन्तिम राजा मानमोरी से यह किला छीन कर अपने अधिकार में कर लिया था। इस संबन्ध में निम्नलिखित दोहे कहे जाते हैं—

चित्रकोट चित्रांगदे, मोरी कुल महिपाल।
गढ़ मंड्या अवलोकि गिरि, देवनसीदा ढाल॥
संगहि लिय सीसोदिए, दुर्गराह रिपिदान।
बापा रावल वीरवर, वसुमति जासु बखान॥
पाट अचल मेवाड़पति, रघुवंशी राजान।
बापा रावर बड बहत, थिरि चीतोड़ सुथान॥

अड़सठ

मारवाड़ में धरणीवराह नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ जो सं० १०४४ तक विद्यमान था। कहते हैं कि उसने मारवाड़ राज्य के ९ बराबर हिस्से करके अपने भाइयों में बांट दिये थे जिसके कारण मारवाड़ "नवकोटी" मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस विषय में संबन्ध रखने वाला एक प्राचीन छप्पय नीचे दिया जाता है—

मंडोवर सामंत हुवो, अजमेर सिद्धसुव।
गढ पूंगल गजमल्ल हुवो, लोद्रवै भांण भुव।
आलपाल अरबद, भोजराजा जालंधर।
जोगराज धरधाट हुवो, हांसू पारक्कर।

नवकोटि किराड़ संजुगत, थिर पंवारहर थप्पिया ।
धरणीवराह धर भाइयां, कोट बांट जू जू किया ॥

अर्थात् धरणीवराह ने अपने राज्य को ९ किलों में बांट कर
ब अपने भाइयों को अलग अलग किया तो मंडोर सामंत को,
ाजमेर सिंधु को पूंगल गजमल को, लुद्रवा भान को, आबू आल-
ाल को, जालंधर अर्थात् जालोर भोजराज को, धाट (उमरकोट)
ोगराज को और पारकर हंसराज को मिला । कोट किराडू (बाड़मेर)
रणीवराह के पास रहा । इस छप्पय की ऐतिहासिक तथ्यता विद्वानों
ी गवेषणा का विषय है । श्री ओझाजी ने इस छप्पय के सम्बन्ध में
ीखा है—

"अनुमान होता है कि यह छप्पय किसी ने पीछे से बनाया हो
ौर उसके बनाने वाले को परमारों के प्राचीन इतिहास का ठीक ठीक
ान न हो," (सिरोही का इतिहास पृ० १४५)

श्री विश्वेश्वरनाथजी रेउ भी अपने "The glories of Marwar"
ामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

"It is also said that owing to these nine chief-
ships, Marwar has come to be known as नवकोटि
ारवाड़ but there is very little truth in the above
छप्पय."

उनहत्तर

सती

कहते हैं अलाउद्दीन की लड़की सीताई ने कान्हड़देव के कुमार
वीरमदेव के साथ शादी करने की इच्छा प्रकट की । जब बादशाह को

यह हाल मालूम हुआ तो उसने इसका विरोध किया जिस पर सीताई ने अपने पिता से कहा—

कहे कुँवरी वीरमदे वरूँ
तात निकर हूँ निश्चै मरूँ।

बादशाह ने अपनी लड़की का यह दृढ़ निश्चय देखकर कान्हड़देव के पास संदेशा भेजा किन्तु सोनगरों ने जब इन्कार कर दिया * तो जालोर पर आक्रमण कर दिया गया। सं० १३६८ में बड़ी वीरता से लड़ता हुआ वीरमदेव काम आया। वीरमदेव का सिर काट कर शत्रु बादशाह के पास ले गये। प्रवाद प्रचलित है कि जब सिर जनाने में पहुँचाया गया तो शाहजादी सीताई ने उसको वरमाला पहनाई और उसके साथ जालोर में सती हो गई।

सत्तर

महाराणा भीमसिंह की मृत्यु के बाद उनकी ८ रानियाँ सती हुईं; अंगारों का पलंग ढाल कर उन्होंने अपने पति का अनुगमन किया।

धन तात मात सतियाँ सवर, बोल कोल धन बोलिया।
सुज किया कंत लारां सयन ढाल अँगारां ढोलिया॥

मनुष्य शरीर पाकर भला कौन सुख नहीं भोगना चाहता? उत्सव, कर्म-धर्म नित्य नये-नये शृंगार, भांति भांति के षड्रस व्यंजन, दान और यश-प्राप्ति—सभी तो नर-देह द्वारा संपन्न हो सकते हैं किन्तु राणा भीम की रानियों ने सांसारिक सुख की ओर नहीं देखा।

* इस संबन्ध में किसी यात्राकर्ता का कहा हुआ यह दोहा स्मरणीय है--

माता लाजै मांगळा, कुळ लाजै चौहाण।
सोनग परणै तुरकणी, (तो) पच्छिम ऊगै भाण॥

जो कभी कुसुम की शय्या पर शयन किया करती थीं और अतर सींचती थीं, वे ही आज अग्नि की ज्वालाओं को बरदाश्त कर रही हैं! पृथ्वी पर आग का बिछौना बिछा कर मन में मग्न हो अपना तन-मन इन रानियों ने होम दिया। कवि आढा किसना के मार्मिक शब्दों में—

"सोवती सेझ कुसमी अतर सींचती।
तेम विपमी पमी झाळ ततियाँ॥"

× × ×

"सुण कंत मरण होतां सती छित करं आग बिछांवणा।

× × ×

अगन झळ धसण मन-मगन आई।"

× ×

"दुरलभ मनपा देह, एह पायां जग ऊछव।
करम धरम कीजिये, निपट सिणगार नवोनव॥
भोजन सतरह भांत, पांत कर कर पोपीजै।
यण हूंता अनेक लाभ, दत कीरत लीजै॥
राणियां मरण भीमेण रै, भव सुख दस नह भाळियौ।
तन यसो दुलभ सतियां तको, पावक झळां प्रजाळियौ॥"

"करे तन होम उमगांणियां कंत कज,
राणियां बात अखियात राखी।"

प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी भी कह गये हैं—

"मुहमद सती सराहिये, जले जो निज पिय लागि।"

इकहत्तर

मरसिया

कहते हैं वीरबल की मृत्यु पर अकबर ने निम्नलिखित मार्मिक दोहा कहा था—

दीन जानि सब दीन, एक न दीनो दुसह दुख ।
सो बिछुरत हम दीन, कछु नहिं राख्यो वीरबर ॥

अर्थात् वीरबल ने दीनों को सब कुछ दे दिया था, केवल दुःसह दुःख किसी को नहीं दिया था। अब उसने मृत्यु के समय वह दुःख भी मुझे दे दिया। उस अद्भुत दानी ने सब कुछ दान कर दिया!

बहत्तर

सिरोही के महाराव सुरताण (सं० १६१६–१६६७) बड़े वी
योद्धा थे। ५१ वर्ष के अपने जीवन-काल में ५२ बार इस वीर ने
शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी जैसा कि मेवाड़ के दधिवाड़िय
चारण खेमराज की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है—

एकावन बरस जींव्यो अनाड,
जीत्यो निज बावन महाराड ।
पाळिया लाड कवियां अपार,
सासण चौरासी दिया सार ॥

८४ गाँव भी इन्होंने दान में दे डाले थे और बड़े लाड़-चाव से
कवियों का पालन-पोषण किया करते थे। महाराव सुरताणसिंह
भी महाराणा प्रताप की तरह अकबर बादशाह का आधिपत्य कभी
स्वीकार नहीं किया—

"अवर अप पतसाह आगे, हो अत जोड़े हाथ।
नाथ उदैपुर न नम्यो, नम्यो न अरबुदनाथ ॥"

एक डिंगल गीत की निम्नलिखित पंक्तियों से पता चलता है कि महाराणा प्रताप को भी एक बार इन्होंने शरण दी थी—

"राखियो सरण राणो जतन,
चँद सूरज कर साखियो ।
प्रथीपती बहादर पता,
जोधाणा जस दाखियो ॥"

अर्थात् महाराव सुरताणसिंह ने सूर्य और चंद्रमा को साक्षी देकर महाराणा प्रताप को बड़े यत्न से अपनी शरण में रखा । उस समय प्रताप जैसे वीर को शरण देने के कारण दिल्ली दरबार के सब योद्धाओं से अधिक यश मिला महाराव सुरताणसिंह को। ऐसे वीर और आत्माभिमानी वीर की मृत्यु पर अनेक कवियों ने मरसिये कहे हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि दुरसा आढ़ा की कही हुई कुछ मार्मिक पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं—

"आज पड़े असमान, आज धर कंकण भागो।
आज महा उतपात, नीर धू तारे लागो ॥
आज कळू ऊथल्ल, आज कव आदर छूटा।
आज टळे आसंग, आज सनमंध विछूटा ॥

× × ×

सुरताण मरण फूटो नहीं, हाय हाय फूटो हियो।"

अर्थात् आज आसमान टूट पड़ा, आज पृथ्वी का कंकण भंग हो गया अर्थात् आज पृथ्वी विधवा हो गई, महाराव सुरताण जैसा पृथ्वीपति जो चल बसा ! आज नीर ध्रुव तारे से लग गया ? आज महा उत्पात उपस्थित हो गया। आज कलियुग में उथल-पुथल मच

गई, आज कवियों का आदर छूट गया, आज कवियों का आश्रय चला गया, आज सब संबन्ध छूट गया। सुरताण का मरण नहीं, आज हृदय ही विदीर्ण हो गया !

तिहत्तर

राजस्थान में अनेक शोक-गीत प्रचलित हैं जो मार्मिकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। कविराजा श्रीचंडीदानजी के निधन पर मोतीसर सूरजमलजी राजक्यावास वालों ने एक गीत कहा था जिसकी निम्नलिखित दो पंक्तियाँ यहां उद्धृत की जाती हैं—

"सुकवि हंसां तणो मानसर सूकिगो,
पातवां कलपवछ तूट पड़ियो ॥"

अर्थात् श्री चंडीदानजी की मृत्यु क्या हुई, सुकवि रूपी हंसों का मानसरोवर ही सूख गया और चारण कवियों का तो कल्पवृक्ष ही टूट कर गिर गया !

चौहत्तर

बीकानेर के इतिहास में महाराजा करणसिंह (१६३१-१६६९) का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। उन्हीं महाराजा के समय में बीकानेर के शासकों के लिए 'जय जंगलधर बादशाह' का खिताब प्राप्त हुआ था। महाराजा वीर होने के साथ साथ स्वयं बड़े विद्वान थे और विद्वानों का आदर करते थे। उनकी मृत्यु पर कहे हुए शोक-गीत की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं :—

[illegible] बिन नागियां, कुंदन बिन कियां।

विरद विण छोड़ियां, कुजस विण बुलायां ।
रेह विण लगायां, गयो राजा ॥

अर्थात् सिर विना झुकाये, विना दंडवत् किये, पृथ्वी पर सुयश के बाजे बजा कर, विरद (यश) को विना छोड़े, अपयश को विना बुलाये और (कलंक की) धूल विना लगाये राजा आज चल बसा !

पचहत्तर

'वेलि क्रिसण रुकमणी री' के रचयिता महाराज पृथ्वीराज की स्त्री लालादे का जब देहान्त हुआ तब चिता जलते समय आपने निम्नलिखित दोहा कहा था :—

तो राँध्यो नहिं खावस्याँ, रे वासदे निसड्ड ।
मो देखत तूँ बाळिया, लालर हंदा हड्ड ॥

हे अग्नि ! अब तुझ पर पकाया हुआ भोजन हम नहीं किया करेंगे क्योंकि मेरे देखते-देखते तूने लालादे के शरीर को भस्म कर दिया है !

छिहत्तर

सन् १८७५ ई० में महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु पर आढ़ा राघवदान ने कई मरसिये कहे थे जिनमें से एक निम्नलिखित है—

"पग पग रच धांम धांम कृत पावन,
गांम गांम प्रति राखे गुणी ।
विद्या पढ़ दांम दांम अत बालक,
सांम नांम नत कथा सुणी ।

कीनो कांम तमांम कला कर,
ठांम ठांम ध्रम अडग थयो ।
छत्रपत उमेद वेद मत चालण,
गुण – ग्राहक सिवलोक गयो ॥ ”

महाराव उम्मेदसिंह बड़े धर्मनिष्ठ, सदाचारी तथा दयालु राजा थे। अपने शासन-काल में सार्वजनिक हित के अनेक कार्य इन्होंने किये। सन १८६७ में नये ढंग से शिक्षा देने के उद्देश्य से एक मदरसा सिरोही में खोला गया जिसमें हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू की शिक्षा दी जाने लगी। सिरोही राज्य में तालीम का सिलसिला यहीं से प्रारंभ हुआ। इससे पहले सिद्धो और चाणक्यनीति को लड़के तोतों की नाईं कंठ कर जाते थे, परन्तु ये पुस्तकें संस्कृत भाषा में होने से वे उनका कुछ भी मतलब नहीं समझ सकते थे। जनता के आराम के लिये सिरोही में एक अस्पताल भी खोला गया। सन १८६८ में जब अकाल पड़ा तो महाराव ने गरीबों की रक्षा के लिये बहुत से रुपये खर्च कर तालाब वगैरह के काम शुरू करवाये, जिनसे कई लोगों की पर्वरिश होती रही। इसी तरह जगह जगह गरीबों को अनाज मुफ्त बाँटने का भी बन्दोबस्त किया। (सिरोही का इतिहास पृ० ३२६ और पृ० ३३१)

सतहत्तर

जूनागढ़ गिरनार के राजा खेंगार की मृत्यु पर उसकी रानी राणकदे ने गिरनार पर्वत को लक्ष्य में रख कर कहा था :—

तैं गरवा गिरनार, काइ मन मंछर धारयो।
मरतां रा' खेंगार, एको सिखर न ढाळियो ॥

अर्थात् हे गौरव-गिरि गिरनार! तेरे मन में यह क्या मात्सर्य समा गया कि राव खेंगार की मृत्यु पर तूने अपना एक भी शिखर नहीं गिराया!

इस दोहे को पढ़ कर हिमालय को लक्ष्य में रख कर कही हुई 'स्कन्दगुप्त' नाटक के शर्वनाग की निम्नलिखित उक्ति का स्मरण हुए विना नहीं रहता—

"देश के हरे कानन चिता बन रहे हैं। धधकती हुई नाश की प्रचण्ड ज्वाला दिग्दाह कर रही है। अपने ज्वालामुखियों को वर्फ की मोटी चादर से छिपाये हिमालय मौन है। पिघल कर क्यों नहीं समुद्र से जा मिलता अरे जड़, मूक, वधिर, प्रकृति के टीले !" (प्रसाद)

अठहत्तर

जोधपुर-महाराज जसवन्तसिंहजी (प्रथम) के संवत् १७०६ में पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रखा गया पृथ्वीसिंह। कहा जाता है कि एक बार जब राजकुमार पृथ्वीसिंह औरंगजेब के सामने खड़े थे तो बादशाह ने इनके दोनों हाथ पकड़ कर हँस कर कहा कि अब तुम क्या कर सकते हो ? राजकुमार ने बड़ी निर्भीक चतुराई से उत्तर दिया कि साधारण राजा भी जब किसी का हाथ पकड़ता है अर्थात् आश्रय देता है तो उस व्यक्ति की मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं किन्तु आज जब दिल्लीश्वर ने मेरे दोनों हाथ पकड़े हैं तो मैं अवश्य ही समस्त पृथ्वी को जीत सकूँगा। इस शब्दों के साथ ही राजकुमार के रोंगटे खड़े हो गये।

संवत् १७२४ में दैव-दुर्विपाक से इस होनहार राजकुमार का अल्पायु में ही देहान्त हो गया। महाराज जसवन्तसिंहजी को बुरहानपुर (दक्षिण) के मुकाम पर जब इस दुर्घटना का समाचार मिला तो उनके शोकोद्गार निम्नलिखित दोहों के रूप में फूट पड़े—

घट सूँ हेक घड़ीह, अळगां[१] आवड़तो[२] नहीं ।

पीथळ वणी पड़ीह, जुग छेटी[३] जसराजवत[४] ॥

अर्थात् तुम्हारे दूर रहने पर एक घड़ी भी मुझे कल नहीं पड़ती थी, तबीयत नहीं लगती थी। हे जसवन्तसिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह! आज तो दुनियाँ में हम दोनों के बीच बहुत अन्तर पड़ गया! (मैं इस लोक में और तुम परलोक में! अब मेरा क्या हाल होगा?)

उनामी

ऊमरकोट ऊमरा ऊमर ने बसाया था। राठोड़ों के मारवाड़ में आने से पहले अर्थात् १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में ही ऊमरकोट सोढ़ा (पँवार) राजपूतों के अधिकार में था। ऊमरकोट का चंद्रण सोढा जहाँ अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ ऊमरकोट का राणा रतनसिंह अपनी वीरता के लिए प्रख्यात है। अंग्रेजों के प्रारंभ-काल में ही राणा रतनसिंह ने काफी उपद्रव मचाया था। बाद में अंग्रेजों द्वारा पकड़े जाने पर राणा की मृत्यु हुई थी। राणा के विषय की यह प्रसिद्ध माट सरसिया के रूप में राजस्थान के राजदरबारों में गाई जाती है :—

रतना रतन राणा, एकरसां ऊमराँ चुकलां फेर ।

दूजा मानव सोढा, एकरसां ऊमराँ चुकलां फेर ॥

---

१. अलग रहने पर २. नहीं लगता ३. फासला, दूरी, अन्तर ४. हे जसवन्तसिंह के पुत्र !

अस्सी

जोधपुर-महाराजकुमार जसवन्तसिंहजी के पास 'चीता' नामक एक घोड़ा था। जव उस घोड़े की मृत्यु हुई तो महाराजकुमार बड़े दुखी हुए। उन्होंने राजूरामजी महड़ू से घोड़े पर कोई मरसिया कहने के लिए कहा। राजूरामजी ने यह सोरठा कह सुनाया :—

मुरधर खित मांसूह, हय केता हाजर हुसी।
(पण) 'चीतो' चित मांसूह, कढै न राजकुमार रै॥

अर्थात् इस मरुधरा में और अनेक घोड़े हाजिर हो जायँगे किन्तु महाराजकुमार के चित्त में से 'चीता' नहीं निकलेगा।

राजूरामजी ने अपने पिता रिवदानजी को भी जव यह दोहा सुनाया तो उन्होंने कहा—कोई कवि यदि कहता तो इस तरह कहता—

हुवौ नचीतो पवन हव, अस रीतो भौ आज।
जीतो खगपत गत जिके, वीतो 'चीतो' वाज॥

अर्थात् आज जव यह अश्व चल वसा तो पवन निश्चिंत हो गया (अव उसका कोई प्रतिस्पर्द्धी न रह गया)। जिस घोड़े ने गरुड़ को भी अपनी चाल से जीत लिया था, वह 'चीता' नामक घोड़ा आज चल वसा !

इक्यासी

अकाल

सं० १९५६ में मारवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा जो अव भी छप्पनिया काल के नाम से प्रसिद्ध है। राजस्थान के कवि ऊमरदानजी लालस ने इस अकाल का इस प्रकार वर्णन किया है—

मांणस मुरधरिया मांणक सम मूँगा,
कोड़ी कोड़ी रा करिया श्रम सूंगा।
डाढी मूंछाळा डलिया में डुलिया,
रळियाँ जायोड़ा गळियां में रुळिया ॥
आफत मोटी ने खोटी पुळ आई।
रोटी रोटी ने रैयत रोवाई ॥

अर्थात मरुधर के मनुष्य जो माणिक्य के समान महँगे थे अब कौड़ी कौड़ी का सस्ता श्रम करने लगे। दाढ़ी मूंछों वाले डलिया उठाने का काम करने लगे। महलों में पैदा हुए गलियों में भटकने लगे। यह बड़ी आफत बुरी घड़ी के साथ आई थी, रोटी रोटी के लिए प्रजा रोने लगी।

बयासी

बांसवाड़ा (सिरोही) के बखतसिंह के समय में बड़ा भारी अकाल पड़ा। उस समय उसने अपना अन्न का कोठार अपनी प्रजा को अर्पित कर दिया था जिसके संबन्ध में निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है--

दुखियो मरुधर देस, सऊ हालै मालवे।
बांसवाड़ै बखतेस, थांसो दीधो देसड़ा ॥

तिरासी

प्रकीर्णक

बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंहजी सं० १७८६ में गद्दी पर

बैठे थे.। चार वर्ष के बाद जोधपुर के महाराज अभयसिंहजी ने बीकानेर पर घेरा डाल दिया। उस समय एक दिन सवेरे सुजानमहल पर एक सफेद चील बैठी दिखलाई पड़ी। महाराज ने चील को करनीजी का रूप समझ कर यह दोहा कहा—

डाढाळी डोकर थई, का तूं गई विदेस,
खून बिना क्यों खोसजै, निज बीकां रा नेस।

अर्थात् हे देवी ! क्या तू वृद्ध हो गई या विदेश चली गई ? बिना अपराध के ही बीकानेर का घर क्यों छीना जा रहा है ?

इसके उत्तर में किसी ने कहा है—

निज नेसां जोखो नहीं, जोखो है जोधाण ।
अभो अपूठो जावसी, मेले मोटो माण ॥

अर्थात् अपने घरों पर कोई खतरा नहीं है, खतरा है तो जोधपुर राज्य के लिए है, अपनी बड़ी प्रतिष्ठा गँवा कर अभयसिंहजी वापिस चले जायेंगे ।

किन्तु इस दोहेबाजी से कोई अर्थ सिद्ध न हुआ। बीकानेर महाराज को जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंहजी से सहायता माँगनी पड़ी। उन्होंने निम्नलिखित दोहा लिख कर जयपुर महाराज के पास भिजवाया—

अभो ग्राह बीकाण गज, मारू समँद अथाह।
गरुड़ छांडि गोविन्द ज्यूं, स्हाय करो जयसाह ॥

अर्थात् अभयसिंह तो ग्राह है, बीकानेर का राज्य गज है, मरुस्थल का अथाह समुद्र है। गरुड़ छोड़ कर गोविन्द ने नंगे पैर ही जिस प्रकार गज की रक्षा की थी, उसी प्रकार हे जयसिंहजी ! आप इस विपत्ति के अवसर पर सहायता कीजिये। इस पर जयसिंहजी

ने जोधपुर पर चढ़ाई करदी। यह समाचार सुन कर बिना बीकानेर लिये ही अभयसिंहजी को लौटना पड़ा।

चौरासी

जैसलमेर के रावल वैरीशालजी (सं० १६२१-सं० १६४७) को कविता करने में बड़ी रुचि थी। अपने पोलपात चारण सेवा की प्रशंसा में आपने निम्नलिखित दोहा डिंगल भाषा में कहा था—

रेणू कुल रा रूप ! तू कविराजावां तिलक ।
चारणां जद भूप, रतनू सब सेवो रतन ॥

अर्थात् हे रेणू कुल के रूप ! तू कविराजाओं में तिलक रूप है। सब राजा कहते हैं कि चारणों में सेवा रतनू रत्न है।

पचासी

नापासर के सुप्रसिद्ध नापा सांखला की वीर पुत्री सांवली अपनी कोमल भावनाओं के लिए प्रसिद्ध थी। अपनी सखी-सहेलियों से जितना प्यार सांवली करती थी, उतना और कोई शायद ही कर पाती हो। होली दिवाली पर नगर भर की कुमारियाँ राजमहल में एकत्र हुआ करती थीं। राज्य की ओर से सबको एक रंग के रेशमी वस्त्र पहनने को मिलते थे। सांवली उन सबके साथ होलियों का सुप्रसिद्ध नाच नाचती थी। सांवली अपने बाप की लाड़ली बेटी थी। नापा [illegible] बात को टालते न थे। बाप और बेटी का प्रेम प्रसिद्ध था।

सांवली अपनी मातृभूमि के कण कण से प्रेम करती थी। उसकी [illegible] थी। [illegible] की उसे सन्तान न थी, पर

सांखली के आगे विमाता की कुछ चल न पाती थी। नापा अपनी बेटी के लिए सब कुछ करने को तैयार था। राज्य के छोटे-मोटे सभी अफसर भी सांखली के आगे हाथ जोड़े खड़े रहते थे।

विमाता के बड़ी मनौती मनाने पर पुत्र हुआ पर वह कुरूप था- काना और कुबड़ा। नापा को वह फूटी आँख न सुहाता था, सांखली पर ही उसका सारा वात्सल्य न्यौछावर था।

सांखली बड़ी हुई। नापा उसका विवाह किसी घरजमाई के साथ करके उसे वहीं रखना चाहता था ताकि वह राज्य-भार सँभालने में अपने अयोग्य भाई का हाथ बँटा सके। विमाता भला उसे कब सहन कर पाती! षड्यन्त्र रच कर उसने नापा की अनुपस्थिति में धोखा देकर सांखली का विवाह दूरदेशवासी राणा से कर दिया। सारा नापासर रो रहा था। विदा होती हुई सांखली को विमाता ने मुस्करा कर कहा था :—

"सपने देखे सांखली, नापासर रा रूंख"

अर्थात् हे सांखली! अब नापासर के पेड़ों को स्वप्न में ही देखना!

छियासी

जयपुर के महाराज ईश्वरीसिंहजी ने अपने अनुभवी मंत्री केशो-दास खत्री को विष देकर मार दिया था जिसका उनको बड़ा पछतावा रहा। अपने पश्चात्ताप को उन्होंने निम्नलिखित पद्यों में प्रकट किया है :—

मंत्री मोटा मारिया, खत्री केसोदास।
जब ही छोड़ी ईसरा, राज करण की आस॥

ईसर ! लेह मिटे नहीं, जुग जुग यह गाया ।
प्याला केसोदास ने, पाया सो पाया ॥ ❀

सत्तासी

पीठवा नाम का एक चारण था जो कोढ़ से पीड़ित होने के कारण कई तीर्थों में स्नान कर आया किन्तु फिर भी उसको रोग से मुक्ति नहीं मिली। एक दिन वह रावल मल्लीनाथजी के छोटे भाई जैतमालजी के यहाँ चला गया। जैतमालजी जब उससे बाँह पसार कर मिलने के लिए आगे बढ़े तो उसने कहा कि मैं कोढ़ी हूँ, ऐसी अवस्था में किस तरह आपसे मिलने का साहस कर सकता हूँ ? जैतमालजी को चारण पर दया आई और बोले कि यदि धर्म में मेरी दृढ़ श्रद्धा है तो मुझसे मिलने पर अवश्य ही तुम्हारा शरीर निष्कलङ्क हो जायगा। प्रवाद है कि जैतमालजी से मिलने पर चारण का कोढ़ जाता रहा। चारण ने जैतमालजी को 'दसवाँ शालिग्राम' कह कर उनका यश बखान किया। इस संबन्ध में निम्नलिखित पंक्ति प्रसिद्ध है :—

"दसमों साळग्राम संवत, दिन तिण पीठव विरद दियो।" ❀

कविराजा बाँकीदासजी की "सुपह-छतीसी" में कहा गया है—

पावन हुवां न पीठवां, न्हाय त्रिवेणी नीर ।
हेक जैत मिळियां हुवां, सो निकळंक सरीर ॥

अर्थात् त्रिवेणी के जल में स्नान करने से भी जो पीठवा पवित्र नहीं हुआ था, वही एक जैतमालजी से मिलने पर निष्कलङ्क शरीर वाला हो गया।

❀ पाठान्तर

प्याला केसोदास को, पाया सो पाया।
यों ही प्याला ईसरा, वापिस फिर आया ॥

अठासी

जब जयपुर और जोधपुर के राज्यों में वैर भाव चल रहा था, जयपुर के महाराज प्रतापसिंहजी पर शत्रु ने आक्रमण कर दिया। अकेले शत्रु को परास्त करना संभव न देख कर महाराज ने अपने कवि को जोधपुर भेजा। कवि ने जोधपुर-महाराज को कहा :—

पत राखो परताप री, नव कोटी रा नाथ।
अगला गुन्हा बखस के, अबके पकड़ो हाथ॥

पुराना वैर भुला कर जोधपुर के महाराज ने जयपुर की मदद की जिससे शत्रु की पराजय हुई।

नवासी

बीदावत सरदारों के हाथ से निकलने पर चूरू पर जब बीकानेर का आधिपत्य हो गया तो किसी स्पष्टवक्ता ने चूरू ठाकुर को संबोधित करते हुए कहा था :—

काँदा खाया कमधजाँ, घी खायो गोलाँह।
चूरू चाली ठाकराँ, बाजन्तै ढोलाँह॥

अर्थात् राठौड़ों को तो प्याज खाने को मिले और गोलों ने घी के माल उड़ाये। हे ठाकुर साहब, इसी के परिणामस्वरूप चूरू ढोल बजते आपके हाथ से निकल कर दूसरे के अधिकार में जा रहा है।

नब्बे

'हमीर महाकाव्य' में चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि एक बार ब्रह्माजी यज्ञ करने के लिए पवित्र भूमि की तलाश

में थे। उस समय उनके हाथ से कमल गिर गया। वह कमल जिस जगह गिरा वह स्थान पुष्कर तीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। यहीं बैठ कर ब्रह्माजी ने यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया और सूर्य का ध्यान किया जिसके परिणामस्वरूप सूर्यमण्डल से एक दिव्य पुरुप का अव-तार हुआ जिसने दैत्यों से यज्ञ की रक्षा की। यह पुरुप चाहमान के नाम से प्रसिद्ध हुआ और ब्रह्माजी की कृपा से राजाओं पर शासन करने लगा।

बड़ुआ की पुस्तकों में लिखा है कि चौहान वंश का प्रवर्तक 'चाह राजा' त्रेता युग में आबू पहाड़ के अग्नि-कुण्ड से उत्पन्न हुआ था :—

अनल कुण्ड सैं ऊपन्या, अर शर फेरी आण।
आबू तें एवाडगढ, चाह बसे चौहाण ॥

अर्थात चाह या चाहमान राजा अनलकुण्ड से उत्पन्न हुआ। इसने पूर्व में एवाडगढ़ में अपना राज्य स्थापित किया।

'वंशप्रकाश' में कहा गया है कि वशिष्टजी ने आबू पहाड़ पर यज्ञ किया। उस यज्ञ के अग्नि-कुण्ड में से चार क्षत्रिय पैदा हुए—(१) प्रतिहार (२) चालुक्य (३) पंवार (४) चाहुवाण (चौहाण)। चाहुवाण नाम इस वास्ते हुआ कि ये पैदा होते ही चार बाँह वाले थे, इससे चतुर्बाहुमान यह संस्कृत नाम हुआ, उसी का संक्षेप में चाहुवाण हो गया। चहाण, चहुवाण, चुहाण, चतुर्भुज, चंडासि और चाहुवाण—ये ६ पर्याय प्रसिद्ध हैं।

चौहान भी परमारों की तरह अपने को अग्निवंशी प्रकट करते हैं और अपने मूल पुरुष चाहमान या चौहान का ऋषि वशिष्ठ द्वारा आबू पर्वत पर अग्नि-कुण्ड से उत्पन्न होना मानते हैं किन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार श्री ओझाजी का कहना है 'वि० सं० १६०० (ई० स०

१५४३) के पहले के चाहमान (चौहान) वंशी राजाओं के १०० से अधिक शिलालेख तथा ताम्रपत्र हमारे देखने में आये हैं, जिनमें इनका अग्निवंशी होना कहीं नहीं लिखा।" *

हमीर महाकाव्य के उक्त प्रवाद के आधार पर भी चौहानों को अग्निवंशी नहीं कहा जा सकता।

इक्यानवे

सन् १७३७ में नवलसिंहजी ने रोहिली गाँव को नवलगढ़ के नाम से बसाया; लोगों को वहाँ बसने के लिए उन्होंने बहुत सी सुविधाएँ दीं। नवलसिंहजी की प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है :—

"घर थारी तू हीं धणी, करता कीधो कौल।
सादाणा सारा सिरह, नखतर थारो नौल॥"

बानवे

शेणी वेदा नामक चारण की पुत्री थी। वीजाणंद नामक भूसलेया चारण से शादी करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था किन्तु शेणी के पिता ने वीजाणंद के सामने ऐसी शर्त रखदी थी कि जिससे वह वीजाणंद से विवाह करने में सफल न हो सकी। इसलिए उसने हिमालय जाकर गलने का निश्चय किया। रास्ते में चलती चलती दिल्ली में आकर वह राव मालदेव के यहाँ ठहरी। 'वहाँ पर योगमाया का विवर था, उसमें योगिनियों से मुलाकात करने को गई। मालदेव भी उसके साथ गया, शेणी की सिफारिश से योगिनी ने उसको एक माला

* सिरोही राज्य का इतिहास पृ० १५७

व खड्ग देकर वरदान दिया कि तुझको चित्तौड़ मिलेगा। कहते हैं कि मालदेव के पहले मूंछें नहीं थीं, देवी की कृपा से मूंछें भी प्राप्त हो गईं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं :—

> वेदाणी वरदायनी, राखे रंग सुहाय।
> मूंछां दीनी मालदे, विरद मुछाळो पाय॥
> दीन खड्ग गढ चित्रकुट, तुठी मशरिका राव।
> खलजी खोला पाथरे, दियो गुमायो दाव॥

अलाउद्दीन खिलजी ने मालदेव को चित्तौड़गढ़ की सूबागिरी दे दी थी। इस सम्बन्ध में प्रवाद है कि देवी खड्ग जब तक कब्जे में रहे तब तक चित्तौड़ सोनगरों के पास रहेगा—ऐसा देवी ने कहा था। लेकिन जब कि राणा हमीर मालदेव की पुत्री बालबाई के साथ शादी करने को चित्तौड़ आया तब बालबाई द्वारा वह देवी खड्ग चुरा कर केलवाड़े ले गया और बाद में चित्तौड़गढ़ धोखे से ले लिया।

तिरानवे

राजपूतों के ३६ वंशों के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

> दश रवि में दश चंद्र में, द्वादश ऋषी प्रमाण।
> चार हुताशन सों भये, वंश छत्तीस बखान॥

ख्यात में ३६ वंशों का विवरण निम्नलिखित रूप से मिलता है—

१ सूर्य—१ गोहिल २ सिकरवार ३ बड़गूजर ४ कछवाह ५ बनाफर ६ गहरवार, राठौड़, बंदेल, बुंदेला ७ बघेल ८ सरनैत ९ निकुंभ १० [illegible]

२ चन्द्र—१ यादव २ गौड़ ३ काबा ४ कौरव ५ भाटी ६ कंवरा ७ तंवर ८ सोरठा ९ कटारिया १० सोमवंशी

३ ऋषिवंशी—१ सेंगर २ विसेन ३ दहिया ४ चमर गौड ५ दीन दीक्षित ६ विलकेत ७ विलखारिया ८ गौतम ६ कनपुरिया १० दीक्षित ११ राजगौड़ १२ भटगौड़

४ अग्निवंश--१ पड़िहार २ सोलंखी ३ चौहान ४ प्रमार

चौरानवे

अकबर सूँ ऊभो करै, आसफ़खान अरज ।
हजरत गढ़ कीजे हलो, करो जेज किण कज्ज ॥

अर्थात् आसफखाँ खड़ा हुआ बादशाह से अर्ज कर रहा है कि हजरत ! गढ़ पर आक्रमण कर दीजिये, देर किस कारण हो रही है ?

आसफखाँ अकबर कहै, भींतां भुरजां जोय ।
बाँको गढ़ भड़ बाँकड़ा, हलो कियां की होय ॥
भीतरला फूटाँ भड़ाँ, की खूटाँ सामान ।
इण गढ़ में होसी अमल, खम तू आसफ़खान ॥

अर्थात् (चित्तौड़ के) किले की दीवारों को देख कर अकबर कहता है कि हे आसफखाँ ! पहले तो यह गढ़ ही बड़ा बाँका है, फिर इसकी रक्षार्थ बाँके राजपूत योद्धा उद्यत हैं—इसलिए केवल आक्रमण करने से ही क्या हो सकता है ? यह किला तो तभी सर हो सकता है जब इसके अन्दर के योद्धाओं में फूट पड़ जाय और वे हमसे आ मिलें अथवा इसके अन्दर की रसद खतम हो जाय, इसलिए हे आसफ़खाँ ! तू धैर्य रख ।

पचानवें

सं० १५८५ में बाबर ने महाराणा सांगा के ऊपर चढ़ाई की। फतहपुर सीकरी के पास बयाना में बड़ा भारी युद्ध हुआ। मस्तक में प्रबल चोट लगने के कारण महाराणा बेहोश हो गये। सरदार उन्हें हाथी से उतार कर पालकी में रख कर सुरक्षित स्थान पर ले आये। महाराणा की मूर्च्छा जब दूर हुई तो उन्हें सब हाल मालूम हुआ। उस वीर क्षत्रिय को इस पराजय पर महान् क्लेश हुआ। उन्होंने सभी से मिलना-जुलना छोड़ दिया और चुपचाप उदास होकर अन्यमनस्क भाव से रणथम्भोर के किले में रहने लगे। कोई उनसे मिल भी नहीं सकता था। कहते हैं बारहट जमणाजी के निम्नलिखित गीत को सुन कर महाराणा ने फिर युद्ध करने का निश्चय किया था :—

सत वार जरासंध आगळ श्रीरंग, विमुहा टीकम दीध वग ।
मेलि घात मारे मधुसूदन, असुर घात नाखे अळग ॥१॥
पारथ हेकरसां हथणापुर, हटियौ त्रिया पड़ंतां हाथ ।
देख, जका दुरजोधण कीधी, पछै तका कीधी कांइ पाथ ॥२॥
इकरां राम तणी तिय रावण, मंद हरे गौ दह-कमळ ।
टीकम सोहि ज पथर तारिया, जगनायक ऊपरां जळ ॥३॥
एक राड़ भव मांहि अवत्थां, औरस आणे केम उर ।
माल तणा, केवा कज मांगा, सांगा, तूं सालै असुर ॥४॥

अर्थात् सौ बार जरासंध से विमुख होकर श्रीकृष्ण भगे थे, अपनी बात मेट कर फिर शत्रु का संहार किया था—तब फिर आप ही युद्ध से विमुख क्यों होते हैं ? ॥१॥

अर्जुन एक बार हस्तिनापुर में द्रौपदी का दुःख देख कर हटा था। दुर्योधन ने उस समय जो किया वह सब जानते हैं पर वह भी तो देखो अर्जुन ने बाद में क्या किया ॥२॥

एक वार मूर्ख रावण सीता को हर कर ले गया था, परन्तु फिर जगत्पति रामचन्द्र ने समुद्र में पत्थरों का पुल बाँध कर कैसा अद्भुत कर्म किया था ॥३॥

एक युद्ध में हार जाने से हे राणा ! आप क्या हिम्मत हार रहे हैं—आप शत्रुओं के वहुत खटकते हैं ॥४॥

छियानवे

वि० सं० १२२८ के आसपास महारावल भोजदेव लोद्रवे (जैसलमेर) की गद्दी पर वैठे। इस समय इनके चचा जैसलदेव विद्यमान थे और उनका अधिकार तनोट गाँव की तरफ था। उन्होंने भोजदेव से राज्य छीनना चाहा परन्तु कुछ वश न चला। तव वे गजनी के मुसलमान वादशाह मुहम्मद गौरी से सहायता लेने गये। जैसलदेव ने मुसलमान वादशाह से यह समझौता किया कि वह पाटन की चढ़ाई में उसकी सहायता करेगा और यवन वादशाह ने लोद्रवा दिलाने का वादा किया। यवन सेना वि० सं० १२३२ में पाटन के लिए रवाना हुई। भोजदेव ने सोचा कि मुसलमानों की सेना पाटन से लौटते समय लोद्रवा अवश्य आवेगी इसे पहले ही रोकना चाहिए जिससे भाटियों की पदवी 'उत्तर भड़ किवाड़ भाटी' को भी वट्टा न लगे। भोजदेव ने यह विचार कर अपने चचा जैसलदेव को निम्नलिखित पद्य लिख कर भेजे :—

भड़ किवाड़ उतराद रा, भाटी झेलण भार।
बचन रखां विजराज रो, समहर वाँधां सार ॥१॥

तोड़ां धड़ तुरकाण री, मोड़ां खान मजेज।
दाखै अनमी भोजदे, जादम करै न जेज ॥२॥

परन्तु इसका कोई फल न हुआ। जैसलदेव पठानों की मदद लेकर लोद्रवे पर आ ही धमका। भोजदेव लड़ता हुआ मारा गया। जैसलदेव ने जब यह देखा कि मजेजखां लोद्रवे को लूट रहा है तो उसने मजेजखां को मार डाला और लोद्रवे पर अपना अधिकार जमा लिया।

सत्तानवें

मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह दूसरे का रतनसिंह से सिंहासनार्थ युद्ध वि० सं० १८२५ में हुआ। रतनसिंह की ओर सिंधिया तथा जयपुर के १५ हजार दसनामी साधु थे। उज्जैन की लड़ाई में अरिसिंह हार गया। सिंधिया के दबाव में पड़ कर अरिसिंह ने ६० लाख रुपये दिये। रतनसिंह को मंदसोर में ७५ हजार की जागीर दी गई पर रतनसिंह सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने नागे साधुओंकी सहायता से फिर मेवाड़ पर चढ़ाई की। १० हजार नागे साधु (महापुरुष) उसकी ओर से लड़े। गंगार के पास भयंकर युद्ध हुआ। अरिसिंह जीत गया। दसनामी साधुओं की हार के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है :—

> अड़सी सूं अड़िया जिके, पड़िया करै पुकार।
> महापुरुषां री मूंडकी, रुळगी गांव गंगार॥

अट्ठानवें

राजकुमार खुर्रम ने अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध बलवा किया। ८८ राजाओं ने जहाँगीर के विरुद्ध खुर्रम का पक्ष लिया किन्तु बूंदी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता कर उसकी रक्षा की

जिसके सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं :—

सरवर फूटा, जळ बहा, अब क्या करो जतन्न ।
जाता घर जहाँगीर का, राखा राव रतन्न ॥

निन्यानवे

सं० १५३९ की कार्तिक शुक्ला ११ को कत्रियासर नामक गाँव में महात्मा जसनाथजी का जन्म हुआ । अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा होने के कारण आप सिद्धाचार्य अथवा सिद्धेश्वर नाम से प्रख्यात हैं। सं० १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी को आपने दीक्षा ली तथा अपनी जन्म-तिथि के दिन ही सं० १५६३ में आपने जीवित समाधि ली थी । भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने में भारतीय संतों की साधना ने जो योग दिया है उसका अभी भली भाँति मूल्याङ्कन नहीं हो सका है । राजस्थान में संत साहित्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है जिसका प्रकाशन अपेक्षित एवं वांछनीय है । जसनाथजी जैसे सिद्धाचार्य महात्मा की सबल वाणी से जिस प्रकार पाखण्डी साधु अपना पाखण्ड छोड़ आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ होते थे इसका परिचय निम्नलिखित उपाख्यान से मिल जायगा ।

लोहापांगळ राजस्थान में एक पाखण्डी साधु हो चुका है । वह १२० शिष्यों के साथ रहता था । कहते हैं इन्द्रियों को वश में रखने के लिए एक तालेबन्द लोहे का लँगोट लगाये रहता था, इसीलिए इसका नाम लोहापांगळ पड़ा । तत्कालीन राजा से उसने परवाना प्राप्त कर लिया था कि वह जिस गाँव में भी जाय, उस गाँव के निवासी भैरव की भेंट के लिए उसे एक बकरा दें । लोहापांगळ घूमते-घूमते एक बार सिद्धेश्वर जसनाथजी की जन्मभूमि कत्रियासर में पहुँचा और उसने वहाँ अपनी मण्डली सहित तंबू तान दिये । दो दो

के बीच एक धूनी कमण्डल था। कत्रियासर वालों ने जसनाथजी के उपदेशानुसार बकरा देने से इन्कार कर दिया जिससे विरोध खड़ा हो गया। गाँव वालों के कहने पर जसनाथजी वहाँ गये और मांस-मदिरा में मस्त लोहापांगळ को देखा। जसनाथजी ने जाकर 'आदेश'* कहा जिस पर कोई कुछ न बोला क्योंकि लोहापांगळ ने आदेश का उत्तर देने की मनाई कर दी थी। इस पर जसनाथजी ने धूनी-कमण्डलों को 'आदेश' कहा। कहते हैं कि सिद्धाचार्य की महिमा के कारण धूनी-कमण्डलों से आवाज उठी 'सिद्धाचार्य को आदेश'। आवाज सुन कर लोहापांगळ घबराया और उठ कर चलने लगा। चलते देख कर सिद्धेश्वर ने कहा—प्रसाद तो लेजा यों कह कर विभूति उठा मन्त्र पढ़ा और लँगोट की ओर विभूति फेंकदी जिससे लोहे का लँगोट तपने लगा। यह देख कर लोहापांगळ चाबी लगा कर लोहे के लँगोट के ताले को खोलने का प्रयत्न करने लगा लेकिन चाबी भी पिघलने लगी। इस पर उसने प्रार्थना की—बचाओ महाराज। उस समय जसनाथजी ने १२० कड़ियाँ कहीं जिससे लँगोट का पानी ऊपर चढ़ता गया। इन १२० कड़ियों में अब ६ कड़ियां उपलब्ध हैं जो अब भी गाँठ आदि रोगों पर मंत्रोपचार में प्रयुक्त की जाती हैं। लोहापांगळ ने जसनाथजी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और पाखण्ड छोड़ आत्म-संयम के सच्चे पथ का पथिक बना। सिद्धेश्वर ने उसको उपदेश ग्रहण करने के लिए ओभाजी के पास भी भेजा था। नमूने के लिए सिद्धेश्वर का एक पद यहाँ अर्थ सहित उद्धृत किया जाता है—

[illegible] ।
[illegible] ॥

* [illegible] 'आदेश' [illegible] करते हैं।

अमी चवै मुख, इमरत बोलो, हालो गुर फरमाणी ।
गाय' र गाडर, भैंस' र छाळी, दुय दुय पिवो पिराणी ॥
सिरज्या देव, अमी रा कूंपा, गळबी काट न खाणी ।
जो गळ काट्यां, होत भलेरो, अपरो काट पिराणी ॥
कांटो भांगो, थरहर कांपो, पर जिवडो यूं जाणी ।
कुंडा धोवै, करद पलारै, खात करै महमाणी ॥
सो नर जांणै, सुरगे जास्यां, कोरा रह्या अयाणी ।
झूठां ने, जमदूत धवैला, भाड़ धवैं ज्यूं धाणी ॥
वल वाकल भैरूं री पूजा, गौरख मना न माणी ।
साधा नै इँद्रलोके वासो, देवतणी देवाणी ॥
साधू हिंयर, हिंडोलै हींडै, पुंता सुरग विवाणी ।
भूखां नै, गुरु भोजन मेलै, तिसियां पावै पाणी ॥
लोहापांगळ, भरमै भूल्यो, जोग-जुगत ना जाणी ।
गुरु परसादे, गोरख वचने, सिध जसनाथ वखाणी ॥

अर्थात् सत्य और संयम से रहना तथा मिथ्या भाषण न करना ही योग की निशानी है। हे प्राणी ! मन रूपी लेखनी से शरीर रूपी पुस्तक पर भगवान के गुण लिखो। मुख से ऐसे मधुर शब्द बोलो मानो अमृत चू रहा है और गुरु के आदेशानुसार चलो। हे प्राणी ! गाय, भेड़, भैंस, बकरी—इनका दूध दुह-दुह कर पिया करो। परमात्मा ने अमृत के कूंपे के रूप में इन जानवरों को बनाया है, इनका गला काट कर इन्हें नहीं खाना चाहिए। हे प्राणी ! यदि गला काटना अच्छा है तो अपना ही क्यों नहीं काटते ? अपने पैर में जरा-सा कांटा चुभते ही तुम थर-थर काँपने लगते हो, दूसरे की पीड़ा को भी इसी प्रकार समझना चाहिए। तुम कुंडा धोते हो, छुरी के धार देते हो और रक्त की महिमा वखानते हो। ऐसा कर्म करने वाले भी यदि यह सोचें कि हम स्वर्ग जायँगे तो वे निरे अज्ञानी

हो रहे। मिथ्याचारियों को यमदूत इस प्रकार सतायेंगे जिस प्रकार भाड़ धान को भून डालता है। मांस-मदिरा से भैरव की पूजा करना श्री गोरखनाथ को अच्छा नहीं लगता था। सच्चे साधुओं को इन्द्रलोक में निवासस्थान तथा देवताओं का मंत्रित्व मिलेगा। साधु लोग हाथी-घोड़ों के झूलों पर झूलेंगे और विमान में बैठ कर स्वर्ग पहुंचेंगे। भूखों को गुरु भोजन भेजता है और प्यासों को पानी पिलाता है। हे लोहापांगल! तुम भ्रम में भूले हो, योग की युक्ति नहीं जानते। गुरु की कृपा से गोरखनाथजी के आदेशानुसार सिद्धाचार्य जसनाथजी ने यह बात कही है।

अपनी प्रबल स्फोटमयी वाणी में रूढिवाद और अन्ध-परम्परा का विरोध इन सन्तों ने किया है जो उस जमाने को देखते हुए अत्यन्त महत्व की वस्तु है। *

सौ

विक्रम की १२ वीं सदी में पोरबंदर पर जेठवा जाति का मेहा नामक राजा राज्य करता था। एक दिन एक हरिण की शिकार करते करते राजा जंगल में रास्ता भूल गया। सूर्यास्त होते होते तो वह बुरी तरह थक गया। इतने में ही मूसलाधार वर्षा होने लगी किन्तु फिर भी वह अपने घोड़े को इधर-उधर दौड़ाता रहा। राजा के सब वस्त्र भीग गये और वह जाड़े से ठिठुर कर घोड़े की पीठ पर ही मूर्च्छित हो गया। घोड़ा अपने स्वामी को एक झोंपड़ी के पास ले गया जहाँ अमरा नामक चारण अपनी पुत्री ऊजळी के साथ रहता था। घोड़ा वहाँ जब हिनहिनाने लगा तो चारण अपनी झोंपड़ी के

---

* यह उपाख्यान श्री सूर्यशंकरजी पारीक के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। इस सम्बन्ध में देखिये 'राजस्थान साहित्य' वर्ष १ अंक १ जनवरी, १९५५.

अंदर से ही बोला—'जो भी कोई अतिथि बाहर खड़ा हो वह अन्दर आ जाय।' किन्तु दो तीन बार कहते रहने पर भी जब बाहर से कोई उत्तर नहीं मिला और घोड़ा पूर्ववत् हिनहिनाता रहा तो चारण झोंपड़ी के बाहर निकल कर क्या देखता है कि घोड़े की पीठ पर एक अतिथि अचेतनावस्था में पड़ा है। घोड़े की पीठ से अतिथि को अपनी पीठ पर लाद कर वह अंदर ले गया और उसे चारपाई पर सुला दिया। फिर झटपट बाहर आकर घोड़े का सामान उतार कर उसे पेड़ से बाँध दिया। ऐसा करने में उसकी चद्दर भीग गई। चकमक द्वारा उसने अंदर जाकर आग जलाने की चेष्टा की परन्तु वर्षाजन्य आर्द्रता के कारण उसको इसमें भी सफलता नहीं मिली। अब वह अपने पुराने वस्त्र ढूँढने लगा ताकि अतिथि के शरीर पर डाल कर उसमें उष्णता उत्पन्न करे किन्तु झोंपड़ी टपकने के कारण उसके सब वस्त्र भीग चुके थे। उसने अपने कपड़े उतार कर अपने शरीर की उष्णता से उसे जिलाने का भरसक उद्योग किया किन्तु उसके वृद्ध शरीर में इतनी उष्णता कहाँ! तब हार कर वह अन्दर के कोने में गया जहाँ उसकी लड़की सोयी हुई थी। उसने कहा "बेटी, यदि अतिथि जाड़े के कारण चल बसा तो सब पाप का भागी हमें बनना होगा। मैंने इसके शरीर में उष्णता उत्पन्न करने के सब उपाय कर लिये। मैंने अपने शरीर की गर्मी से भी इसे जिलाना चाहा किन्तु मैं इसमें भी कृतकार्य न हो सका। अब यदि तू अपने वस्त्र उतार कर इसे अपने बाहुपाश में आबद्ध कर सके तो कदाचित् तेरे शरीर की उष्णता से इसकी प्राण-रक्षा हो जाय।" पुत्री स्तब्ध होकर सुनती रही, एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। यह देख कर पिता ने कहा—"मैं जानता हूँ, इस प्रकार की आज्ञा का पालन तुम्हारे स्त्री-धर्म के खिलाफ़ है और इसलिए मेरे शब्द तुम्हें पागल के प्रलाप से जान पड़ते होंगे, पर मैं भी अतिथि के प्रति तथा तुम्हारे प्रति अपना

कर्तव्य भली भाँति समझ कर ही ऐसा कह रहा हूँ। तू अभी कुमारी है। जिसे मैं कन्यादान करूँगा, वही तेरा पति होगा।" यह कह कर पिता बाहर चला गया। ऊजळी के हृदय में संघर्ष चलने लगा। अंत में उसने अतिथि की चारपाई के चारों ओर सात प्रदक्षिणा कर मन ही मन उसे अपना पति वरण कर लिया। "यह अतिथि चाहे किसी भी जाति का क्यों न हो, मैं इसकी अर्द्धांगिनी बन कर मृत्यु-मुख में पड़े हुए इसके साथ शयन करती हूँ। हे जगदम्बे! यदि मैंने अब तक अपने कौमार्य-व्रत की रक्षा की हो और अब यदि मैं कर्तव्य-दृष्टि से ही इस कार्य में प्रवृत्त हो रही हूँ तो यह अतिथि सचेत हो उठे, अन्यथा इसके साथ ही सती होकर मुझे अपने व्रत की रक्षा करनी होगी।"

प्रातःकाल जब अतिथि उठा तो उसने अपने आप को एक अनिंद्य सुन्दरी के बाहु-पाश में आबद्ध पाया। ऊजळी ने उसे रात की सारी घटना कह सुनाई और बोली—"मेरे सौभाग्य-रक्षक देवता! मैं तो आप को ही अपना पति वरण कर चुकी।" अतिथि ने भी अपना परिचय दिया और जाते समय कह गया कि अपना रथ भेजकर तुम्हें बुलवा लूंगा और विधिवत् तुमसे विवाह कर लूँगा। पर अतिथि कभी लौट कर नहीं आया और ऊजळी विलाप करते ही रह गई। 'मेरा प्रिय मुझे लेने आयेगा और मैं राजवधू के उच्चासन पर बैठ सकूंगी' उसके इस प्रकार के स्वप्न धूल में मिल गये। "आकाश से मेह हरा-भरा करता आ पहुंचा किन्तु मेरे 'मेह' को किस बिजली ने बिलमा लिया।" इस प्रकार वह करुण-क्रन्दन करती रही। ऊजळी के वियोग सम्बन्धी बड़े मार्मिक सोरठे राजस्थान में प्रचलित हैं—

(१)

जिण विन घड़ी न जाय, जमवारो किम जावसी।
बिलखतड़ी बीहाय, जोगण करगो जेठवा॥

जिसके बिना एक घड़ी भी व्यतीत होना जब इतना दुष्कर है
ो यह सारा जीवन क्योंकर बीतेगा ? तू तो विलखती हुई छोड़ कर
मे जोगिन कर गया !)

(२)

दुनियां जोड़ी दोय, सारस नै चकवा तणी ।
मिल्यो न तीजो मोय, जो जो हारी जेठवा ॥

(संसार में सारस और चकवे के लिए ही प्रसिद्ध है कि वे
अपनी जोड़ी से वियुक्त होने पर जीने नहीं पाते । हे जेठवा ! मैं
ोज खोज कर हार गई, इनकी समता का कोई तीसरा प्राणी मुझे
हीं मिला । तुम्हें छोड़ कर अन्य किसी के साथ जीवन-यापन करना
रे लिए सर्वथा असम्भव है ।)

(३)

वै दीसै असवार, घुड़लाँ री घूमर कियाँ ।
अवला रो आधार, जको न दीसै जेठवा ॥ *

(घोड़ों को घुमाते हुए सवार तो दिखाई पड़ते हैं किन्तु मुझ
बला का आधार जेठवा नहीं दिखाई देता ।)

(४)

जळ पीधो जाडेह, पाबासर रै पावटै ।
न्हानकिये नाडेह, जीव न ढूकै जेठवा ॥

(जिसने मानसरोवर के घाट का गहरा जल पिया है उसकी
ाटे छोटे जलाशयों के जल से तृप्ति नहीं हो सकती ।)

(५)

जोतां जग सारोह, ओरूं दीठ न आवियो ।
थयौ जेठा थारोह, परवत हिवड़ो पेट में ॥

---

* पाठान्तर वे आवैं असवार, घुड़लाँ री घूमर कियाँ ।
आतम रो आधार, जको न दीसै जेठवा ॥

(सारा संसार देख डाला किन्तु तुम दूसरी बार दिखलाई ही नहीं पड़े। हे जेठवा ! तुम्हारा हृदय सचमुच ही पर्वत की तरह कठोर हो गया।)

(६)

गांधी थारी हाट, दोय वसत मैं वीसरी।
एक गळै रो हार, दूजौ हलामण जेठवो ॥

(हे गंधी ! तुम्हारी दूकान पर मैं दो वस्तुएँ भूल गई—एक तो गले का हार और दूसरी हालामण रियासत का रहने वाला जेठवा।)

(७)

इण्डा अनळतणाह, वन माळै मूकी गयो।
उर अर पांख बिनाह, पाकै किण बिध जेठवा ॥

(अनलपंख (पक्षी विशेष) के लिए कहा जाता है कि वह उड़ते हुए ही अंडा देता है। अंडा आकाश से नीचे की तरफ गिरता हुआ रास्ते में ही फट जाता है और उसके अन्दर का पक्षी जमीन पर न गिर कर आकाश में ही मँडराने लगता है। ऊजळी की उक्ति है कि हे जेठवा ! तू मुझे अनलपंख के अंडों की तरह छोड़ कर चला गया किन्तु वे अण्डे छाती और पंखों की गर्मी के बिना किस प्रकार पक सकते हैं ?) ॥

(८)

वहतो जळ छोडेह, पुसळी भर पीधो नहीं।
नैनकड़े नाडेह, जीव न धापै जेठवा ॥

(बहते जल को छोड़ कर चुल्लू भर भी पानी नहीं पिया। अब इन छोटे छोटे तालाबों से प्यास नहीं बुझती, मन को तृप्ति नहीं होती) ॥

(९)

जेठा थारै लार, धोळा वसतर धारिया।
माळ चनण री हाथ, जपती फिरूं रे जेठवा ॥

(हे जेठवा ! तेरे लिए मैंने सफेद वस्त्र धारण कर लिये और मैं चन्दन की माला हाथ में लिये हुए जप करती फिरती हूँ) ॥

(१०)

पावासर पैसेह, हंसा भेळा नी हुया ।
बुगलां सँग बैसेह, जूण गँवाई जेठवा ॥

(मानसरोवर में प्रवेश कर हंसों का साथ नहीं किया; बगुलों के संग बैठ कर हे जेठवा ! व्यर्थ ही जन्म बरबाद कर दिया !)

(११)

अंगूठै री आग, लोभी लगवाड़ै गयो ।
रूनी सारी रात जक न पड़ी रे जेठवा ॥

(हे लोभी ! तू अंगूठे की आग लगा कर चला गया । ❀ मैं रात भर रोती रही, तनिक भी चैन मुझे नहीं मिलता ।

यह सोरठा इस प्रकार भी सुना जाता है :—

अंगूठै री आळ, लोभी तुंही लगायगो ।
रूनी सारी रात, जक नहिं पड़वी जेठवा ॥

अर्थात् हे यौवन के लोभी ! तू ही अँगूठी की आळ (स्पर्श, छेड़छाड़) लगा गया अर्थात् मेरे शरीर का स्पर्श करके स्पन्दन पैदा कर गया । हे जेठवा ! मैं सारी रात विरह में रोती रही पर मुझे कल न पड़ी !

(१२)

टोळी हूं टळियांह, हिरणां मन माठा हुवै ।
वाल्हा वीछड़ियांह, जीव न ढूकै जेठवा ॥

(अपने झुण्ड से बिछुड़ने पर हरिणों के मन भी उदास हो जाते

❀ कहते हैं प्राचीन समय में किसी को दण्ड देने के लिए उसका अंगूठा जला दिया जाता था जिससे भयंकर पीड़ा होती थी ।

हैं तो हे जेठवा ! प्रियतम से वियुक्त होकर प्रियतमा कैसे जीवे ?)

(१३)

ताळां सजड़ जड़ेह, कूंची ले कान्है थयो।
ऊघड़सी आयेह, जड़िया रहसी जेठवा ॥ †

(१४)

आवै और अनेक, जां पर मन जावै नहीं।
दीसै तो बिन देख, जागां सूनी जेठवा ॥

(अन्य अनेक आते हैं किन्तु उन पर मन नहीं जाता। हे जेठवा ! तुम्हारे बिना जगह सूनी दिखलाई पड़ती है।)

(१५)

चकवा सारस बाण, नारी नेह तीनूं निरख।
जीणो मुसकल जाण, जोड़ो बिछड्यां जेठवा ॥

(चकवा, सारस और नारी-प्रेम—इनको देख कर यही जान पड़ता है कि जोड़ी के बिछुड़ने पर जीना कठिन है।)

(१६)

जाळूँ म्हारो जीव, भसमी ले भेळी करूं।
प्यारा लागै पीव, जूण पलट्यां जेठवा ॥

(मैं अपने शरीर को जला दूँ और उसकी भस्म इकट्ठी कर लूँ। मेरा इस प्रकार जन्मान्तर होने पर इस भस्म को भी प्रिय प्यारे ही लगेंगे !) इस मार्मिक सोरठे को पढ़ कर जायसी के निम्नलिखित दोहे का अनायास स्मरण हो आता है—

---

† हे जेठवा ! तू मेरी हृदय रूपी कोठड़ी में प्रेम का ताला लगा कर और चावी अपने पास लेकर एक ओर चला गया। अब यदि तू ही वापिस आकर इस ताले को खोले तो यह खुल सकता है, अन्यथा यह सदा के लिए बन्द ही रहेगा।

यहि तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग गिरि परै, कंत धरै जेहि पांव ॥

(अर्थात् इस शरीर को जला कर भस्म कर दूँ और पवन से कहूँ कि इस भस्म को उड़ा लेजा—शायद यह भस्म वहाँ जाकर गिर पड़े जहाँ प्रियतम के चरणों का सुयोग इसे प्राप्त हो जाय। प्रेमिका की यह अभिलाषा कितनी मार्मिक है!)

(१७)

जंजर जड़िया जाय, आगे जाये उर महैं।
कूंची कौण करांह, जड़ियो जाते जेठवा ॥

(हृदय में आगे जाकर जंजीरें जड़ दी गई हैं। जेठवा जाते समय ताला भी लगा गया—उसके बिना चावी कौन बनवा सकता है?)

(१८)

वालम हूं वीजोग, कांई तैं करता कियो।
जोगण हूं अणजोग, जुड़ै नहीं मो जेठवो ॥

(हे विधाता! प्रियतम से विछोह भी यह तूने क्या बनाया! मैं इस संयोग के योग्य हूँ अर्थात् मेरी और जेठवा की जोड़ी है तो भी मुझे मेरा जेठवा नहीं मिलता।

(१९)

विछड़न सूं दीवार, विधि सूं पेख्यो वल्लभो।
संभारूं संसार, जीव न धापै जेठवा ॥

(सौभाग्यवश एक बार प्रियतम के दर्शन हुए थे; अब तो वियोग के कारण हम दोनों के बीच में दीवार-सी खड़ी हो गई है। सारे संसार को देख रही हूँ किन्तु मन को कहीं तृप्ति नहीं मिलती।)

(२०)

रही हुती मन राच, मन हिलाय मूकी गयो।
केथो कीजे काच, जुड़ै न मोती जेठवो ॥

(प्रियतम के प्रति मैं मन में अनुरक्त हुई थी; वह मन को हिला कर छोड़ कर चला गया। अब काच को लेकर क्या हो? जेठवा रूपी मोती नहीं मिलता!

ऊपर दिये हुए बीस सोरठों के अतिरिक्त कुछ अन्य सोरठे भी मिलते हैं—

हिवड़ो हिल हिल जाय, बेगर री बेड़ी जिमैं
कारी न लागै काय, जीव डिगायां जेठवा ॥२१॥
कुंवळ नयन कुळ सुच्छ, म्रिगनैणी मिरगां समी।
मुंहड़ै आगळ मुच्छ, जम क्यूं जासी जेठवा ॥२२॥
जोगी जपै जिकाय, आंगण बिच ऊभो रहै।
तो मों पड़ी तिकाय, गुड़ै न संगियो जेठवो ॥२३॥
अंदर ऊठी आग, वीछड़तां तो वल्लहा।
मनहज सूधो भाग, जुड़िये ठरसी जेठवा ॥२४॥
चढ़ै ज चौरंग वार, आटै बिहुं अखी तणै।
तिण तूं जाणनहार, मूढ न जाणै जेठवा ॥२५॥
जेठै तणी जगीस, मनहूंते मेली नहीं।
वाल्हा मिलणूं बीस, जोड़ी तो सम जेठवा ॥२६॥
चढ़ियो नीर अपार, पड़ियो जद पीधो नहीं।
गूंधळियै जळगार, जीव न धापै जेठवा ॥२७॥
तावड़ तड़तड़ताँह थळ साम्हे चढ़तां थकां।
साधो लड़थड़तांह, जाडी छायां जेठवो ॥२८॥

("ज्येष्ठ मास का सूर्य अपनी प्रखर रश्मियों द्वारा संसार को तपा रहा था और ऐसी भीषण गर्मी के समय जब मुझ पथिक को सीधे खड़े वालू के टीले पर चढ़ना पड़ा तथा उस परिश्रम के कारण जब शरीर क्लान्त हो गया, ठीक उसी समय जेठवा रूपी वृक्ष की गहरी

छाया में मुझे आश्रय मिल गया।' *)

संभव है ऊपर दिये हुए इन २८ सोरठों ‡ के अतिरिक्त और भी सोरठे लोगों की जबान पर हों। वियोग के उद्गारों का भला कोई अंत थोड़े ही है ?

कहते हैं कि ऊजळी जेठवा की तलाश करते करते जब पोरबंदर पहुँची तो जेठवा ने कहा—बहिन, हम दोनों का दो भिन्न भिन्न जातियों में जन्म हुआ है और फिर चारण और राजपूत जाति में तो प्रेमी-प्रेमिकाओं का सम्बन्ध कभी हुआ ही नहीं। मैं किसी चारण के साथ तेरा विवाह करके तुझे अपना आधा राज्य दे सकता हूँ किन्तु अपना विवाह होना संभव नहीं। पर सती नारी ने एक बार जिसे अपना पति वरण कर लिया था उससे हटने की कल्पना तक वह नहीं कर सकती थी। 'धरती नुं धावण' के प्रसिद्ध लेखक श्री झवेरचन्दजी मेघाणी लिखते हैं कि नारी ने अपमानित होकर जेठवा को शाप देते हुए कहा "विश्वासघाती ! तू ने धोखा दिया, फँसा कर मेरा अपमान किया। अब मैं समझी कि मैंने कुम्हार के घर से कच्चा घड़ा उखाड़ लिया था और उससे जीवन-सागर पार करने चली थी ! कुटिलता और प्रपंच भरा तुम्हारा राज्य सुलग उठे; इस नगरी के निर्जन खँडहरों पर काले काग बोलेंगे !

"कळकळ करशे काग, घुमलगढ़ घेराशे घणो
अंगडे लागी आग, (तुं ने) भडका वाळी भाणना !"

(धरती नुं धावण पृ० ४१)

मेह का राज्य समय पाकर रसातल को चला जाता है। यह कोढ़

---

* देखिये राजस्थान वर्ष १ संख्या २ सं० १९८२ वि० में 'डिंगल भाषा के प्राचीन ऐतिह्य' शीर्षक लेख (पृ० १९)

‡ ये सोरठे डिंगळ भाषा के प्रेमी श्री किशनसिंहजी (बिसाऊ) से सुन कर लिखे गये थे जिसके लिए लेखक उनका ऋणी है।

से गल कर बुरी मौत मरता है। मेह की यह हालत सुन कर ऊजळी वहाँ पहुँचती है और पति की मृत्यु पर सती होती है।

एक सौ एक

मूमल लोद्रवा की राजकुमारी थी। उसके सौन्दर्य की महक दूर दूर तक छाई थी। बड़े बड़े राजकुमार उसके साथ विवाह करने के इच्छुक थे। लोद्रवा से ४ मील की दूरी पर उसका महल था जिसे आज भी संसार मूमल की मैड़ी कह कर पुकारता है। महल के चारों ओर काच नदी बहती थी। नदी के किनारे उद्यान था। उसी में मूमल जवानी के मदहोश तराने गा गाकर अपनी आन्तरिक आकुलता को थपकियाँ दिया करती थी।

मूमल ने एक प्रतिज्ञा की थी। उसके साथ वही विवाह कर सकेगा जो काच नदी को तैर कर पार करले। मूमल विलास की भूखी नहीं थी। उसे चाहिए था एक वीर पति जिसकी ख्याति से दिग्-दिगन्त गूँज उठे।

सूमरे सोढों का सामन्त महेन्द्रा आखेट खेलता-खेलता ऊमर-कोट से लोद्रवा आ पहुँचा। प्यास के मारे तड़प रहा था, थका था-हारा था। रेगिस्तान की चिलचिलाती धूप में काच नदी के उस पार मूमल का हरा-भरा महल देख कर हरियाली मूमल से मिलने की तीव्र आकांक्षा से वह व्याकुल हो उठा। काच नदी को तैर कर पार करने वाले राणा पर मूमल ने अपना तन-मन न्यौछावर कर दिया।

महेन्द्र और मूमल- मूमल और महेन्द्र। प्रेम का पौधा पन-पने लगा। महेन्द्र ऊमरकोट से दौड़ा आता और मूमल की गोद में

थक कर दोनों बहिन सो गईं, एक दूसरे से लिपट कर।

महेन्द्र आया। उसने देखा—मूमल एक पुरुष के साथ लिपटी सोयी है। वह चौंक उठा—उसने निश्चय किया एक विलासिनी नारी की वासना का कीड़ा वह नहीं बनेगा। वह लौट गया, हमेशा के लिए लौट गया।

मूमल रोती रही, बिलखती रही। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गईं किन्तु महेन्द्र न आया। विरह व्यथा ने मूमल के प्राण ले लिये। महेन्द्र ने जब यह सुना तो वह भी तड़प-तड़प कर मर मिटा। आज भी राजस्थान का नारी हृदय जब चमचम करते चाँदी के टीलों के उस पार सोये महेन्द्र को मूमल की विरह-व्यथा का संदेश भेजता है तो सारा मारू रो पड़ता है। राजस्थान में आज भी मूमल के सौन्दर्य की प्रसिद्धि है। मूमल का निम्नलिखित गीत राजस्थान की साधारण जनता में अत्यन्त प्रचलित है—

काळी रे काळी काजळिये री रेखड़ी रे
हाँजी रे, काळोड़ी काँठळ में चमके बीजळी
म्हाँरी बरसाले री मूमल, हालै नी ओ आलीजे रे दे

न्हायो मूमले माथाम्रियो रे मेट सूँ
हाँजी रे, कड़ियाँ तो राळ्या मूमल केसड़ा
म्हाँरी जग मीठी मूमल, हालै नी ओ आलीजे रे दे

सीसड़लो मूमल रो सरूप नारेळ ज्यूँ
हाँ जी रे, केसड़ला मांड़ेची रा वासग–नाग ज्यूँ
म्हाँरी जग–वाली ओ मूमल, हालै नी ओ अमराणे रे दे

नाकड़लो मूमल रो खाँडम्रिये री धार ज्यूँ
हाँ जी रे, आँखड़ल्याँ रँगभीनी री रतनाळियाँ
म्हाँरी अमरत–भर मूमल, हालै नी ओ रसीले रे दे

होठड़ला मूमल रा रेसमिये रे तार ज्यूँ
हाँ जी रे, दाँतड़ला ऊजळ-दंती रा दाड़म-बीज ज्यूँ
म्हाँरी हरियाळी ओ मूमल. हालै नी ओ अमराणे रे देस

पेटड़लो मूमल रो पींपळिये रे पान ज्यूँ
हाँ जी रे, हिवड़लो मूमल रो साँचे ढाळियो
म्हाँरी नाजुकड़ी मूमल, हालै नी ओ रसीले रे देस

जाँघड़ली मूमल री केळिये रे थंभ ज्यूँ
हाँ जी रे, साथळड़ी सपीठी पींडी पातळी
म्हाँजी माड़ेची मूमल, हालै नी ओ आलीजे रे देस
जायी रे मूमल ओिये लोद्रवाणे रे देस में
हाँ जी रे मायी रे मूमल ने राणे महँदरे
म्हाँजी जेसाणे री मूमल, हालै नी ओ अमराणे रे देस

अर्थात् काले कज्जल की पतली सी रेखा मूमल की सुन्दर आँखों में ऐसी शोभा दे रही हैं मानो बादलों क घटा में बिजली चमक उठी हो। बरसात के समय प्रेमियों के हृदय में अमृत बरसाने वाली मूमल! प्यारे के देश को चल।

प्रिय-मिलन के लिए मूमल ने मेट से सिर धोकर स्नान किया और अपने लम्बे केशपाश को सुखाने के लिए कमर तक छितरा लिया। ए जगत की मीठी मूमल, प्यारे के देश को चल। मूमल का शीश सुन्दर नारियल जैसी गठन का है और उसका केशपाश वासुकि नाग जैसा है। ए जगत की प्यारी मूमल, राणा महेन्द्र के देश अमरकोट को चल।

मूमल का सुन्दर नाक खाँडे की धार की तरह तीखा है और आँखें रसभरी औररतनारी हैं। हे अमृत भरी मूमल, प्यारे के देश को चल।

मूमल के होठ रेशम के तार की तरह बारीक. "तले और कोमल

है इस उज्जवल-दंती प्रेमिका के दाँत दाड़िम के बीज की तरह हैं। पावस की हरियाली की तरह प्रमियों के हृदय को हरित कर देने वाली मूमल प्रेमी के देश को चल।

मूमल का पेट पीपल के पत्ते की तरह है, उसका हृदय-स्थल साँचे में ढला हुआ, सुडौल है। ए नाजुक मूमल, प्रिय के देश को चल।

मूमल की जंघा देवालय के खंभ की तरह है, जंघा का निम्न भाग सपाट और पिंडली पतली है। हे माड़-देश (जैसलमेर राज्य) की आदर्श सुन्दरी मूमल, अलबेले प्रियतम के देश को चल।

मूमल लोद्रव देश (जैसलमेर राज्य की प्राचीन राजधानी) में पैदा हुई और राणा महेन्द्र ने उसके प्रेम का रस भोगा।

ए जैसलमेर की हमारी मूमल, राणा महेन्द्र के देश को चल। ॐ मूमल का उपाख्यान दूसरे रूप में भी प्रचलित है जो नीचे दिया जाता है †

मूमल गूजर राजाओं के वंश में उत्पन्न हुई थी। अपने पिता की मृत्यु के बाद उसने देश पर शासन किया। शहर के सीमान्त-प्रदेश पर उसने एक महल बनवाया था और बड़ी दूर बाहर से लेकर दरवाजे तक मय दानव की-सी कला-चातुरी से एक ऐसी पत्थर की नहर का निर्माण किया गया था जो देखने में बिलकुल पानी से भरी हुई नदी की तरह मालूम पड़ती थी। महल के द्वार पर पत्थर की दो सिंह-मूर्तियाँ बनवा कर रखवा दी गई थीं जो इतनी सजीव और भयङ्कर जान पड़ती थीं कि देखने वाले के होशहवास गुम हो जाते थे। महल के अंदर बैठने के कमरे में सात पलंग रखे हुए थे जो बिलकुल इकसार जान पड़ते थे। इनमें से छः पलंगों के नीचे एक एक गहरा कुआँ

ॐ राजस्थान के लोकगीत (प्रथम भाग उत्तरार्द्ध) पृ० २६४–२६७।

† विशेष विवरण के लिए देखिये History of India as told by its own historians pp. 345-347. (Elliot)

खुदवा दिया गया था और रुई के पहल जैसी हलकी चीज से इस तरह आच्छादित करवा दिया था कि इनमें से किसी पर बैठते ही बैठने वाला सीधा कुएँ में पहुँच जाय। सातवाँ पलंग वस्तुतः बैठने के उपयुक्त था। मूमल ने यह घोषणा करवा दी थी कि मैं उसी को पति के रूप में वरण करूँगी जो नदी और सिंहों की परवाह न कर महल तक पहुँचेगा और बैठने के उपयुक्त पलंग पर जा बैठेगा।

एक दिन हमीर सूमर अपने तीन आदमियों के साथ शिकार को गया हुआ था। उसके साथ राणा महेन्द्र भी था जो उसके मंत्री का साला होता था। रास्ते में एक जोगी मिला जिसने मूमल के सौन्दर्य की इतनी अधिक प्रशंसा की कि हमीर सूमर के हृदय में मूमल को देखने की इच्छा बलवती हो उठी। हमीर निर्दिष्ट पथ पर चला किन्तु कृत्रिम नदी को वह असली नदी समझ बैठा और आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत न हुई। हमीर के दो साथियों की भी यही हालत हुई। अंत में राणा महेन्द्र मूमल के दर्शन के लिये चला। एक बार तो कृत्रिम नदी को देख कर वह घबराया किन्तु अपने भाले से जब उसने नदी की गहराई का पता लगाना चाहा तो उसे पता लग गया कि नदी का वस्तुतः कोई अस्तित्व ही नहीं है। तुरन्त ही नदी पार कर वह सिंहों तक पहुँचा। सिंहों की तरफ अपना भाला जब उसने फेंका तो सिंहों की पोल खुल गई। तब वह मूमल की एक दासी द्वारा महल के उस कमरे में ले जाया गया जहाँ सातों पलंग रखे हुए थे। सब पलंग एक ही तरह के जान पड़ते थे, महेन्द्र ने सोचा कि यहाँ भी विना चतुराई किये पार न पड़ेगा। उसका भाला यहाँ भी बड़ा काम आया। उसकी सहायता से उसने पता लगा लिया कि छः पलंग बैठने के उपयुक्त नहीं हैं। तब ७ वें पलंग पर वह जा बैठा। दासी ने मूमल को जाकर सब हाल कह सुनाया। मूमल तुरन्त आई और महेन्द्र को देख कर अत्यन्त हर्षित हुई। मूमल ने महेन्द्र को पति के

रूप में वरण कर लिया। महेन्द्र ने वह रात मूमल के महल में ही बिताई। प्रातः काल महेन्द्र अपने साथियों से मिला और सारी घटना उन्हें कह सुनाई। हमीर सूमर ने यह इच्छा प्रकट की कि महेन्द्र उसे भी एक बार मूमल के दर्शन करादे। राणा महेन्द्र हमीर सूमर को गड़रिये के वेश में अपने साथ ले गया। हमीर सूमर के हृदय में महेन्द्र के प्रति ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने महेन्द्र को कैद कर लिया। जेल के पहरेदारों से राणा महेन्द्र ने दोस्ती गाँठ ली। बड़ी तेज़ चलने वाली सांडिनी (ऊंटिनी) पर सवार होकर वह हर रात मूमल के पास पहुँचता और रातों रात गुप्त रूप से जेल में लौट आता।

एक रात संयोगवश मूमल अपनी बहिन से मिलने के लिए गई हुई थी। पीछे से महेन्द्र आया। मूमल को वहाँ न देख उसके चरित्र पर उसे सन्देह हुआ और वह मूमल से बिना मिले ही लौट गया। उस रात के बाद महेन्द्र ने मूमल के यहाँ जाना भी बन्द कर दिया। महेन्द्र की इस उपेक्षा से बेचारी निर्दोष मूमल बड़ी दुखी हुई। कारागार से मुक्त होकर महेन्द्र भी अपने देश को चला गया था। तलाश करती करती मूमल महेन्द्र के देश पहुँची। वहाँ महेन्द्र के महल के सामने मूमल ने अपना महल बनाया जिससे खिड़की में होकर कभी कभी वह महेन्द्र की झलक पाती रहे किन्तु मूमल अपने प्रिय के दर्शन करने में सफल न हो सकी। अंत में जब मूमल ने देखा कि उसके प्रिय का हृदय उसकी ओर से बिलकुल फिर चुका है तो उसने निराश होकर अपने प्राण त्याग दिये। मूमल की मृत्यु का समाचार जब महेन्द्र के पास पहुँचा और जब उसे पता चला कि वियोग में घुल घुल कर उसने प्राण त्याग दिये तो महेन्द्र भी अत्यन्त विह्वल और अधीर हो उठा। प्राणों की असह्य पीड़ा का भार अब प्रेमी भी न सह सका। उसके भी प्राण पखेरू उड़ कर उस लोक को चले गये जहाँ से कोई

लौट कर नहीं आता ! निर्दोष और हतभागिनी भारतीय नारी ! क्या दुःख की संवेदना के लिये ही तेरा जन्म हुआ है ? हिन्दी के यशस्वी कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है :—

> अविश्वास हा अविश्वास ही नारी के प्रति नर का
> नर के तो सौ दोष क्षमा हैं स्वामी है वह घर का। (द्वापर)
>
> अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
> आँचल में है दूध और नयनों में पानी ॥ (यशोधरा)

परिशिष्ट

डिंगल व्याकरण के कुछ पृष्ठ

वर्ण–परिवर्तन

डिंगल में संस्कृत के एक स्वर के स्थान में दूसरे स्वर का परिवर्तन प्रायः देखा जाता है। उदाहरण—

	संस्कृत	डिंगल
अ के स्थान में इ	यज्ञ	जिग्ग
	लच्मी	लिछमी
	उत्तम	उत्तिम
अ के स्थान में उ	रघुनाथ	रुघनाथ
आ के स्थान में अ	देवांगना	देवंगना
इ के स्थान में अ	कवि	कव
	विभूति	भभूत
इ के स्थान में ई	चिल्ल	चील
ई के स्थान में ए	मुनीश्वर	मुनेसर
ई के स्थान में अ	सर्पिणी	सांपण
उ के स्थान में अ	आयुध	आवध
	वपु	वप
उ के स्थान में ओ	सुवर्ण	सोव्रण
ऊ के स्थान में ओ	अनसूया	अनसोया

(इह अनसोया आश्रम अम्ह प्रीति प्रमाणां —रामरासो)

	संस्कृत	डिंगल
ऋ के स्थान में आ	शृंखला	सांकळ
ऋ के स्थान में अ	तृण	तण
ए के स्थन में इ	नरेन्द्र	नरिन्द
	एकान्त	इकन्त

ऐ के स्थान में ई सदैव	सदीव
ओ के स्थान में ऊ साङ्गोपाङ्ग	सांग्यूपांग
औ के स्थान में ओ गौर	गोरा
पौत्र	पोता

ऊपर के उदाहरण केवल नमूने के लिए दिये गये हैं। प्रारंभ में दिखाया गया है कि अ के स्थान में इ और उ हो जाते हैं किन्तु इससे यह न समझा जाय कि अ के स्थान में केवल ये दो स्वर ही आते हैं। 'सुरगापत' तथा 'अमरापर जैसे शब्दों में अ के स्थान में आ का आगम स्पष्ट देखा जा सकता है। यह यहाँ भी भ्रम नहीं होना चाहिए कि संस्कृत का अ अथवा अन्य कोई स्वर डिंगल में सर्वत्र दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाता है। उदाहरणार्थ संस्कृत का भक्त शब्द लीजिए जिसका डिंगल में 'भगत' रूप देखा जाता है। यहाँ संस्कृत का अ डिंगल में भी अ ही रहा है। इसीलिए ऊपर दिये गये नियम में 'प्रायः' शब्द का प्रयोग किया गया है।

डिंगल में संस्कृत के एक व्यंजन के स्थान में दूसरे व्यंजन का परिवर्तन प्रायः देखा जाता है। उदाहरणार्थ

क के स्थान में ग उपकार	उपगार
	उदा० "कीधोड़ो उपगार, नर कृतघण मानै नहीं"
ख के स्थान में ह लेख	लेह
	उदा० "ईसर लेह मिटै नहीं जुग जुग यह गाथा"
ग के स्थान में य गगन	गयण
सागर	सायर
	उदा० (१) गाजिया नगारा गयण गाज
	(२) सायर पोखै सर भरै
घ के स्थान में ह मेघ	मेह
	उदा० "दाण न मांगै मेह"

च के स्थान में छ	तिर्यन्च	तिरछो (एकवचन)
		तरछ्या, तिरछा, तिरछ्या (बहुवचन)
		उदा० "तरछ्या नैणां तीर, कामण जग घायल कियो"

संस्कृत छ डिंगल में अपरिवर्तित देखा जाता है।

ज के स्थान में य	गजवर	गयवर, गैमर गैंवर
		उदा० "हैमरां गैमरां घड़ा पाड़ि"
	राजा	राय

संस्कृत झ में परिवर्तन के उदाहरण नहीं मिले।

ट के स्थान में ड़	घट	घड़ो
	घटा	घड़ा अर्थात् सेना
ट के स्थान में ठ	दृष्टि	दीठ, डीठ
ट ,, ण	राट्	राणा
ठ ,, ढ	पीठ	पीढो
ठ ,, व, र	पठन	पढ़णो
	कुठार	कुवाड़ो, कवाड़ियो, कुराड़ो

संस्कृत ड और ढ में परिवर्तन के उदाहरण नहीं मिले।

थ के स्थान में ह	गाथा	गाहा
	कथन	कहणो
द के स्थान ड	दण्ड	डंड
	दान	डाण
ध के स्थान में ह	दधि	दही
	शशधर	सिसहर ×
	वधू	बहू

× धण कुमलाणी कमदणी, सिसहर ऊगो आय। (राजस्थान रा दूहा)
(अर्थात् स्त्री कुमुदिनी की तरह कुम्हला गई है, हे चन्द्र! आकर उदित हो।)

	जलधर	जळहर
न के स्थान में ण	मृगनयनी	मृगनैणी
	स्नेह	णेह
न के स्थान में ल	जन्म	जलम ‡
प के स्थान में व	कपाट	कुंवाड़
फ के स्थान में ह	मुक्ताफल	मोताहळ
ब के स्थान में भ	बुभुक्षा	भूक
भ के स्थान में ह	शोभना	सोहणी
म के स्थान में व	ग्राम	गांव
	श्यामल	सांवळो
य के स्थान में ज	सूर्य	सूरज
	यश	जस
	योनि	जूण
	यमुना	जमना
य के स्थान में ल	यष्टि	लाठी
	पर्याण	पलाण
	पर्यंक	पिलंग
र के स्थान में ळ	दारिद्र्य	दाळद
ल के स्थान में ड़	धूलि	धूड़ *
व के स्थान में प	ऐरावत	ऐरापत
	गंधर्व	गन्द्रप
,, ,, म	विवाह	वीमाह

---

‡ बीजुळियाँ नीळजियाँ, जळहर, तू ही लज्ज ।
सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरो-मधुरो गज्ज । (राजस्थान रा दूहा)

* रे थोड़ी ऊमर रही, काय न छोडै कूड़ ।
हिय अंधा तूं नांख अन्न, धंधा ऊपर धूड़ ॥ (राजस्थान रा दूहा)

श के स्थान में स	वश	वस
ष के स्थान में स	वर्ष	बरस
ष के स्थान में ख	वर्षा	बिरखा
	पुरुष	पुरख
ल के स्थान में ळ	तुलसी	तुळछी
ह के स्थान में र	गृहे	घरे*
क्ष के स्थान में ख	क्षमा	खमा
त्र के स्थान में त	मित्र	मित
ज्ञ के स्थान में ण	आज्ञा	आण
	राज्ञी	राणी

डिंगल की पूर्वकालिक क्रिया

पूर्वकालिक क्रिया से तात्पर्य उस अपूर्ण क्रिया से है जिसका काल किसी दूसरी पूर्ण क्रिया के पहले पड़ता हो। जैसे, वह भोजन करके सो गया। यहां 'भोजन करके' पूर्वकालिक क्रिया है।

डिंगल और गुजराती की पूर्वकालिक क्रिया में एक अन्तर है। गुजराती में दीर्घ ईकारान्त का प्रयोग मिलता है, और डिंगल में सामान्यतः ह्रस्व इकारान्त का। उदाहरणार्थ

गुजराती (१) आ राजेन्द्रोए स्वभुजपराक्रम वडे अनेक युद्धो जीती पोताना राज्यनो विस्तार वधार्यो हतो। अर्थात् इन राजाओं ने अपने भुज पराक्रम द्वारा अनेक युद्धों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया था।

(२) राजाओ पण निरन्तर प्रजाना सुख दुःखोभी विचार करी तेना कल्याण माटे ज निरन्तर अहर्निश प्रयत्नो करता।

---

*आज घरे सासू कहे, हरख अचानक काय? (वीर सतसई)

अर्थात् राजा लोग भी निरन्तर प्रजा के सुख-दुःख का
विचार करके उसके कल्याण के लिए ही दिन रात अनवरत
प्रयत्न किया करते थे।

उक्त दोनों उदाहरणों में 'जीती' (जीत कर) और 'क
करके) दोनों गुजराती की पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं और दीर्घ ईक
रान्त हैं।

डिंगल (१) मँडोवर लियउ मल्लेछ मारि
(२) धर लई मँडोवर धणी धाइ
(३) पतिसाह पन्चनद लङ्घि पाइ
(४) वरसिंह बन्दि हूँता छुडाइ
(५) परमेसर प्रणवि प्रणवि सरसति पुणि

ऊपर के उदाहरणों में 'मारि' 'धाइ' 'लङ्घि', 'छुडाइ' और 'प्रणवि' डिंगल की पूर्वकालिक क्रिया के उदाहरण हैं और सभी ह्रस्व इकारान्त हैं।

डिंगल में पूर्वकालिक क्रिया के साथ जब दीर्घ स्वर का प्रयोग होता है तो वह प्रायः 'ए' को लिये हुए होता है। जैसे,

(१) सजन सिधाया हे सखी, सूना करे अवास।
(२) जिण थारे तट जाय, उदर भरे पीधो उदक।
मिनख जिके फिर माय, आया नह जननी उदर॥
(३) महिमा चलण मुरारि, देखे दसरथ-राव-उत।

उक्त तीनों उदाहरणों में करे (करके), भरे (भरकर) और देखे (देखकर) डिंगल की पूर्वकालिक क्रियाएँ हैं और एकारान्त हैं।

पूर्वकालिक क्रिया के अन्य रूप

पूर्वकालिक क्रिया के अन्य रूप बनाने में स्वरांत धातुओं में 'यनें,' 'यर' और 'कर' जोड़ा जाता है और व्यंजनान्त धातुओं में

'नैं' तथा 'अर' जोड़ा जाता है। उदाहरणार्थ स्वरांत 'सो' धातु से 'सोयनैं', 'सोयर' और 'सोकर' रूप बनते हैं तथा व्यंजनान्त 'लिख्' तु से 'लिखनैं' और 'लिखर' रूप निष्पन्न होते हैं।

कभी-कभीपूर्वकालिक 'कर' (करके) के स्थान में उसी अर्थ के तनार्थ 'की' प्रयुक्त होता है। जैसे,

"दूदाँ धोयर चावळ रांध्या, विरतां भेयर दाल।
म्हारी धरा में हिल्यो डूँगजी, लूट लूटकी खाय॥"

यहाँ 'लूट लूटकी' का अर्थ है 'लूट-लूट कर'। 'लूट लूटकी' का । अर्थ में प्रयोग शेखावाटी की ओर प्रचलित है।

डिंगल का 'आँ' प्रत्यय

स्वर्गीय श्री सूर्यकरण जी पारीक ने 'वेलि किसन रुकमणी री' । भूमिका के पृष्ठ ११२ पर लिखा है "डिंगल में करण व संबन्ध का गाँ' प्रत्यय केवल बहुवचनवाची शब्द के आगे आता है।" श्री ारीकजी ने 'आँ' प्रत्यय को केवल करण व संबन्ध का प्रत्यय माना किन्तु वास्तव में देखा जाय तो यह प्रत्यय डिंगल के सभी कारकों व्यवहृत है जैसा कि नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट होगा—

र्ता- (१) धनि धनि कहे सुरां मुप धाए। (राम रासो)
अर्थात् मुख से धन्य धन्य कह कर देवता दौड़े।
(२) सूरां आलस एस में अकज गुमायों आव। (वीर सतसई)
अर्थात् शूरवीरों ने आलस्य और ऐश में व्यर्थ ही आयु गँवाई।
(३) ढोल सुणांता मंगळी मूंछां भूंह चढन्त। (वीर सतसई)
अर्थात् विवाह के समय का मांगलिक ढोल सुन कर मूंछें भौंहों : जा लगती हैं। उक्त तीनों उदाहरणों में 'सुरां', 'सूरां', और 'मूंछां' ा ,आँ' प्रत्यय कर्ता कारक का प्रत्यय है।

र्म- (१) मयंद धपावे मोतियां, हंसां लांघणियांह। (बांकीदास)

राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद

(लेखक श्री कन्हैयालाल सहल एम० ए०)

राजस्थान के प्राचीन सांस्कृतिक उपाख्यानों का अभिनव
लन। राजस्थान के गौरवमय अतीत का जीता जागता चित्रण।
र्वपूर्ण विस्तृत भूमिका सहित। मूल्य ३।)

कतिपय सम्मतियाँ

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एम० ए०, डी० लिट्—

"राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' अपने ढंग की अनोखी
क है। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक महत्व से पूर्ण ऐसी पुस्तक ने
दी तथा भारतीय साहित्य के गौरव बढ़ाने में अंश ग्रहण किया है।
पुस्तक से राजस्थान की जनता में जो स्वाभाविक इतिहास-बोध
जसे अंग्रेजी में Sense of history कहते हैं) विद्यमान है, उसका
च्छा परिचय मिलता है। साथ साथ यह राजस्थान की जनता की
ाता-प्रियता का भी परिचायक है। उद्धृत दोहों के अलावा इस
तक में कुछ ऐसी मनोहर ऐतिहासिक और Romantic या
न्यासिक कहानियां हैं जो कि निखिल भारत की साधारण संपत्ति
ने के लायक हैं। इनमें से कुछ कुछ अंग्रेजी पत्रिकाओं में प्रकाशित
दिया जाता तो अच्छा रहता। अति आवश्यक इसके द्वितीय
ड का प्रकाशन होना चाहिए। आशा है कि राजस्थानी तथा
दी संसार में अपना योग्य समादरपूर्ण स्थान इसे मिलेगा।"

श्री प्रभाकर माचवे—

अर्थात् लंघन करने वाले हंसों को मृगेन्द्र (हाथियों का वध कर) मोतियों से तृप्त कर देता है। यहाँ 'हंसां' का 'आँ' प्रत्यय कर्म कारक का प्रत्यय है।

करण—(१) के सूरा धर कज्ज है, के सूरा पर कज्ज।
सुरपुर दोहू संचरै, रूकां ह्वै रज रज्ज॥ (बांकीदास)

अर्थात् कुछ शूरवीर तो ऐसे होते हैं जो पृथ्वी के लिए तलवारों से टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और कुछ शूरवीर ऐसे हैं जो दूसरों के लिए असि-धारा में स्नान करते हैं। दोनों ही प्रकार के शूरवीर स्वर्ग में विहार करते हैं। यहाँ 'रूकां' का 'आँ' प्रत्यय करण कारक का 'आँ' प्रत्यय है।

(२) "मयंद धपावै मोतियां" अर्थात् सिंह मोतियों से तृप्त कर देता है। यहाँ 'मोतियां' का 'आँ' प्रत्यय करण सूचक है।

संप्रदान—सीहां देस विदेस सम, सीहां किसा उतन्न। (बाँकीदास)

अर्थात् सिंहों के लिए देश और विदेश समान हैं, उनके लि[ए] वतन कैसा? यहाँ 'सीहां' का 'आँ' प्रत्यय सम्प्रदान का प्रत्यय है।

अपादान—तिण वार गुलालां मूंठ तीर।
उड झड़ै वूर खागां अबीर॥ (विरद सिणगार)

अर्थात् बाणों का चलना गुलाल की मुट्ठी फेंकने के समान और तलवार की धार से जो बुरादा झड़ता है वही अबीर है। य[हाँ] 'खागां' का 'आँ' प्रत्यय अपादान सूचक है। तलवारों से बुरादा झड़ने में अलग होने का भाव प्रकट होता है।

सम्बन्ध—सादूळो वन संचरै, करण गयंदां नास। (बांकीदास)

अर्थात् हाथियों का नाश करने के लिए शार्दूल वन में विचरण करता है। यहाँ 'गयंदां' का 'आँ' प्रत्यय सम्बन्ध कारक का प्रत्यय है।

अधिकरण—नथी रजोगुण ज्यां नरां। (महाकवि सूर्यमल्ल)

अर्थात् जिन मनुष्यों में रजोगुण नहीं है। यहाँ 'नरां' का 'आँ' प्रत्यय अधिकरण-सूचक है।

सम्बोधन—बाव तणो जस बदिगां, कंठ करो कहियांह। (बांकीदास)

अर्थात् हे कवियो! बाघ का जो यश हमने कहा है उसे कंठस्थ करलो। यहाँ 'बदिगां' का 'आँ' प्रत्यय संबोधन-सूचक है। ऊपर के उदाहरणों से 'आँ' प्रत्यय की व्यापकता स्पष्ट है।

की याद हो आती है। उसी जीवट और परिश्रम से सहलजी ने ये प्रवाद एकत्रित किये हैं। राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन के विकास और वीरतापूर्ण इतिहास की ये झलकें लोकसाहित्य के सभी अध्येताओं के लिये अत्यन्त उपादेय हैं। स्थान स्थान पर तौलनिक अंग्रेजी-संस्कृत कविताओं के उद्धरण दे देने से लेखक की रसज्ञता का भी परिचय मिलता है। सहलजी ने पुस्तक की सुन्दर भूमिका लिखी है।"

३ श्री डा० रघुवीरसिंह एम० ए०, एलएल० बी०, डी० लिट्०

"इन प्रवादों में जो एक विशेष बात मिलती है, वह है मध्य-कालीन भावना एवं रंग। इन्हीं प्रवादों की सहायता से हमारे भावी उपन्यासकार मध्यकालीन राजस्थान के ऐतिहासिक उपन्यास लिख सकेंगे।'

४ श्री डा० दशरथ शर्मा एम० ए०, डी० लिट्०

"सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालने वाली पुस्तकों की आजकल हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य में बहुत कमी है। पुराने ऐतिहासिक काव्यों में एक विशेषता थी; वे राजनैतिक स्थिति का चित्रण तो करते ही थे किन्तु इसके साथ साथ समाज, सभ्यता एवं संस्कृति का उन्होंने इतना अच्छा वर्णन किया है कि हम उन्हीं पुस्तकों को साङ्गोपाङ्ग इतिहास कहने के अधिकारी हैं। बाण के 'हर्षचरित' और कल्हण की 'राजतरंगिणी' की दुरालोचनाएँ हम अनेक बार सुन चुके हैं। यह दुरालोचना उसी अपूर्ण शिक्षा का प्रभाव है कि जिसके आधार पर किसी देश के राजनैतिक इतिहास को ही हम उसका समग्र इतिहास मान बैठे हैं। राजस्थान के अनेक इतिहास प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें राजनैतिक इतिहास का अच्छा विवरण है; किन्तु सांस्कृतिक इतिहास से वे प्रायः शून्य हैं। अतः प्रायः सौ प्रवाद एकत्रित कर राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालने का जो स्तुत्य प्रयास सहलजी ने किया है वह अभिनंद-

। शौर्य और पराक्रम की अद्भुत कथाओं एवं दयावीरों और ोरों की गौरवगाथाओं का प्रस्तुत पुस्तक में अच्छा संकलन है, इन पर सहलजी की मार्मिक टिप्पणियां भी पढ़नीय हैं। बीकानेर, ुर, जयपुर, कच्छ आदि राज्यों- के इतिहास-लेखक इनसे समु- लाभ उठा सकते हैं।

श्री वटेकृष्ण, सहायक सम्पादक "नागरी प्रचारिणी पत्रिका"

"काव्य में प्रसंगोद्भावना का बहुत महत्त्व है। वीर पुरुषों से संबद्ध लोक-प्रचलित प्रवादों में इसका सौन्दर्य बहुत निखरा हुआ देखा जाता है। उनमें इतिहास और काव्य का सामञ्जस्य किसी देश संस्कृति के भव्य दर्शन कराता है। राजस्थान अपने वीरों की नतिकता और शौर्य के लिए लोकविश्रुत है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उसी भूमि के सांस्कृतिक रूप के साक्षात् दर्शन कराए गये हैं। यह काव्य ार इतिहास दोनों के अनुसन्धान में बहुत उपयोगी है। इसके लिए ़क का श्रम प्रशंसनीय है।"

पं० गिरिधर शर्मा "नवरत्न" (झालरापाटन)

"हमारे पूर्वजों के शौर्य, औदार्य, प्रेम और उदात्तता का ह खजाना है। आपने ऐसी सुन्दर वस्तु का संकलन करके बड़ा काम िया है। पुस्तक को पढ़ते पढ़ते और सुनते सुनते श्रोता तथा वक्ता हृदय पर गहरी छाप पड़ती है। क्या ही अच्छा हो हमारे बच्चों ो बचपन से ही ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जायँ।"

७ विद्यामहोदधि स्वामी नरोत्तमदासजी एम० ए०

"प्रवादों के संग्रह की सूझ बड़ी सुन्दर है। सारी किताब ड़ी रोचक है।"

८ पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०

"पुस्तक महत्त्वपूर्ण जानकारियों से भरी और पठनीय है।"